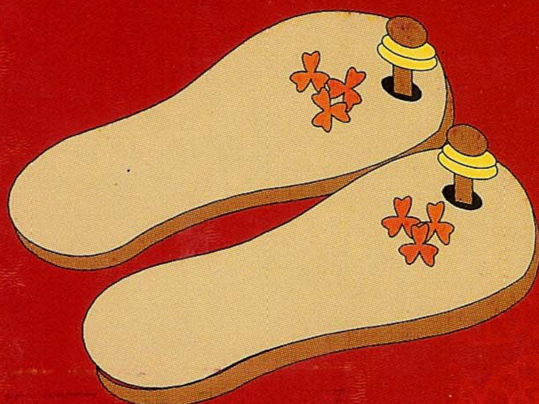


॥ सङ्कर्षणचरितामृतम् ॥

(खण्डकाव्यम्)

डॉ.तुलसीदास परौहा

।। श्री रामकुमारस्वामिने नमः ।।

श्री उत्तर अहोविल योगपीठ

आचार्य आश्रम, नयागाँव, श्रीचित्रकूटधाम में समासीन

'राजगुरु'

स्वामी सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य जी

का जीवन चरित्र

।। सङ्कर्षणचरितामृतम् ।।

(खण्डकाव्यम्)

: प्रणेता एवं सम्पादकः

डॉ. तुलसीदास परौहा

सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

* **स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी (अधिकारी जी)**
  आचार्य आश्रम नयागाँव चित्रकूट, सतना (म. प्र.)
* **डॉ. तुलसीदास परौहा**
  संस्कृतभवन, स्फटिकशिला मोड़, चित्रकूट, सतना (म. प्र.)

प्रकाशक :

जी. बी. एस. परिवार
कलहरा
जिला - कटनी (म. प्र.)

प्रकाशित सन् : २००७

न्यौछावर : १०१/-

मुद्रण एवं शब्द संयोजन :

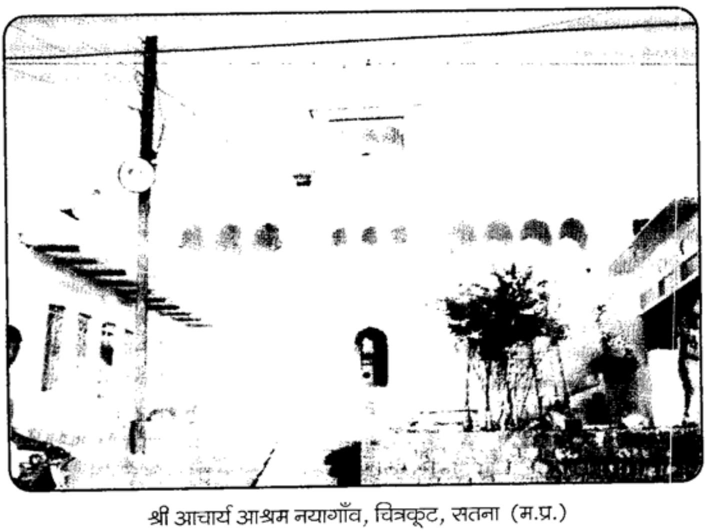
शोभा प्रिंटिंग प्रेस
न्यू बस स्टैण्ड के पास, कटनी (म. प्र.)
दूरभाष : ०७६२२-४०८३६८



श्री बालाजी वेंकटेश
श्री वेंकटेश्वर धाम हरिद्वार



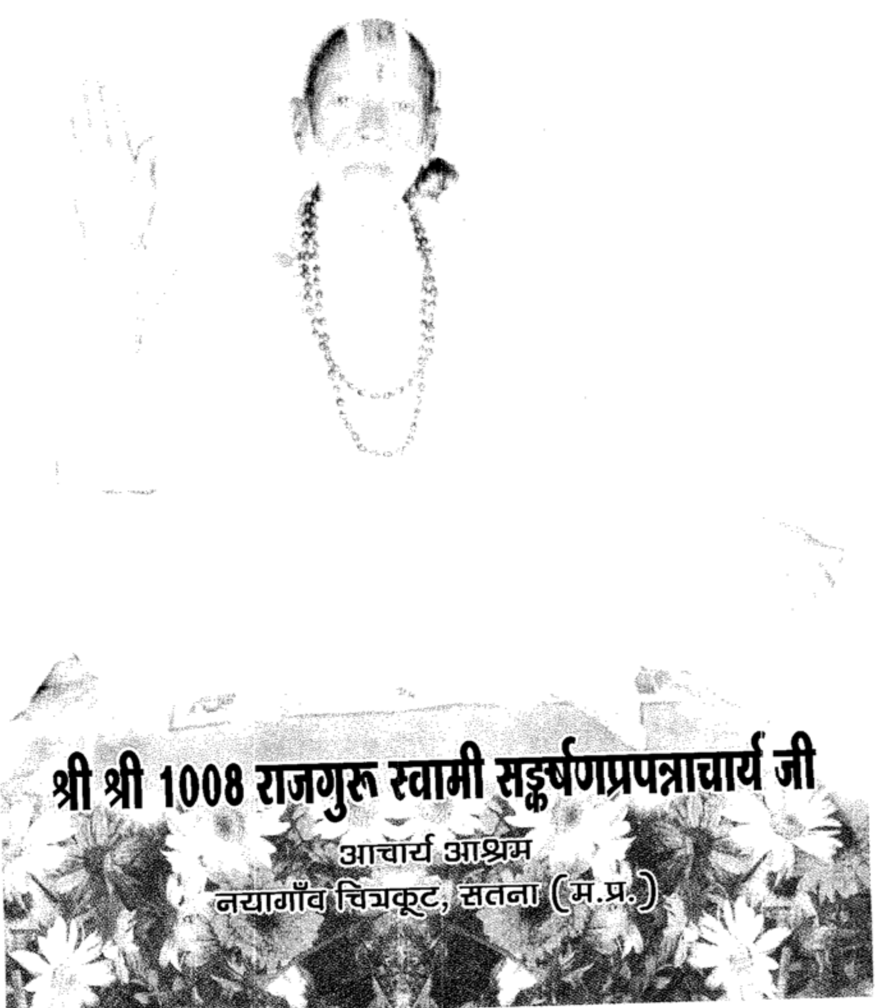
श्री रामकुमार भगवान्
आचार्य आश्रम श्री चित्रकूटधाम



श्री आचार्य आश्रम नयागाँव, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

॥ श्री रामकुमारस्वामिने नमः ॥





"राजगुरु" स्वामी सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य
(व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

स्वामी सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य जी ज्ञान, क्रिया एवं विराग से जीवन के परम लक्ष्य शाश्वत आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करने वाले महापुरुषों में से एक हैं। प्रचार-प्रसार एवं दिखावे से दूर श्रीस्वामीजी विशिष्टाद्वैत वेदान्त के मनीषी, श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के परमाचार्य, ज्ञान एवं वैराग्य की समवेतमूर्ति तथा भक्ति के वरदपुत्र हैं। श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों के, भक्तिपूर्ण व्याख्यान के लिए प्रसिद्ध श्रीस्वामीजी अब तक श्रीमद्भागवत का सहस्रावर्तन (1000 बार) पाठ एवं व्याख्यान कर चुके हैं। आपके स्वभाव की सरलता, आचरण की पवित्रता तथा ईश्वर की उपासना में सक्रियता वन्दनीय है।

आपका जन्म भारतवर्ष के मध्यप्रदेश प्रान्त में कटनी जिले के एक छोटे से गाँव कैलवारा में विक्रम संवत् १९८९ (ई. १९३९) में मार्गशीर्ष पूर्णिमा तिथि में हुआ। आपके पिता सरयूपारीण गर्गगोत्रीय ब्राह्मण श्री कमला प्रसाद जी तथा माता श्रीमती छोटी बाई थीं। आप में बाल्यकाल से ही भौतिक जगत् से पराङ्मुखता तथा ईश्वर के प्रति उन्मुखता थी। आपने वेद, वेदाङ्ग एवं पुराणों का अध्ययन राजगुरु आचार्य आश्रम श्रीचित्रकूटधाम में तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) में सम्पन्न किया। श्रीस्वामीजी में सांसारिक विरक्ति, ईश्वर में अनन्य अनुरक्ति तथा राममय प्राणियों में निःस्वार्थ सेवात्मक क्रियासक्ति का परीक्षण करके "राजगुरु" स्वामी बलरामदेशिकाचार्य जी ने श्री नारायण मन्त्र की दीक्षा प्रदान की तथा आश्रम का उत्तराधिकार एवं विष्णुमय समष्टि की निःस्वार्थ सेवा का गुरूतर कार्यभार सौंप दिया।

श्रीस्वामीजी का तपोमय व्यक्तित्व समाज के लिए अनुकरणीय है। धार्मिक जनों के लिए पूजनीय है। वह राष्ट्र के लिए गौरव का विषय है तो, भोगवादी सभ्यता पोषित व्यक्तियों के लिए पूजनीय है। वह राष्ट्र के लिए

गौरव का विषय है तो भोगवादी सभ्यता पोषित व्यक्तियों के लिए आश्चर्य है। श्रीस्वामीजी आचार्य आश्रम की जिस गौरवपूर्ण राजगुरु परम्परा के परमाचार्य हैं, उस आश्रम का निर्माण सवाई मानसिंह (महाराजा जयपुर, राजस्थान) ने अपने गुरु श्री मधुराचार्य जी (पयोहारी जी महाराज) के तपस्या करने हेतु श्रीचित्रकूटधाम पधारने पर करवाया था। श्रीचित्रकूट की आध्यात्मिक भूमि ने श्री पयोहारी जी को इतनी शांति एवं आनन्द दिया की वे यहीं रह गये। इस प्रकार राजगुरु परम्परा का विकास हुआ। कालान्तर में अनेक राजा, महाराजा इस आश्रम के शिष्य बने। अतः यह आश्रम राजगुरु आचार्य आश्रम के नाम से प्रतिष्ठित हुआ। आज भी इस आश्रम को चेरिटी कमिश्नर जयपुर (राज.) द्वारा एक निश्चित धन राशि वार्षिक अनुदान के रूप में प्राप्त हो रही है। आपके वैराग्यपूर्ण जीवन की प्रत्येक श्वाँस समाज सेवा एवं राष्ट्रसेवा के लिए समर्पित है। अत एव मानव सेवार्थ श्रीस्वामीजी ने अनेक समाज सेवा प्रकल्प प्रारंभ किये हैं। जिनका संचालन शिष्यों एवं जन सामान्य के तन, मन एवं धन के सहयोग से सफलता पूर्वक गतिशील है।

निवेदिका :

श्रीमती प्रभा परौहा

संस्कृत भवन

स्फटिक शिला मोड़, चित्रकूट

जिला - सतना (म. प्र.)

॥ श्री रामकुमारस्वामिने नमः ॥



श्री श्री 108 युवराज स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी

आचार्य आश्रम

नयागाँव चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

मङ्गलानुशंसा

भारतीय वसुन्धरा में अपार करूणावरूणालय श्रीमन्नारायण की प्रेरणा से विलक्षण विभूतियाँ जगद्भूत्यर्थ अनादिकालतः अवतरित होती रही हैं। यहाँ आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य, आद्यजगद्गुरु रामानुजाचार्य तथा गोस्वामी तुलसीदास के रूप में उनका अवतरण होता रहा है, किन्तु यह कष्ट का विषय है कि हम उन्हें सही अर्थों में तब जान पाये हैं, जब वे हमें छोड़कर परमधाम चले गये।

यह अत्यंत हर्ष एवं गौरव का विषय है कि भगवान् की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप श्री शुकदेव के अपर विग्रह परमपूज्य गुरुदेव (राजगुरु स्वामी सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य जी महाराज) हम सबके मध्य विभाषित हो रहे हैं। इन महामनस्वी अलौकिक सन्तमूर्ति को जानना, समझना तथा उनका सान्निध्य प्राप्त करना जन सामान्य के लिए अपेक्षित ही नहीं आवश्यक भी है।

यह परम हर्ष का विषय है कि आपके जीवन पर डॉ. तुलसीदास परौहा जी ने सारगर्भित रीति में 'श्रीसङ्कर्षणचरितामृतम्' नामक संस्कृत में खण्डकाव्य लिखा है। जिसमें महाराजश्री का जीवनदर्शन बड़ी कुशलता के साथ गागर में सागर की भाँति संक्षेप में गाया गया है। श्री वैष्णवों के लिए अत्यंत उपादेय श्रीवैष्णवोपयोगी कार्यक्रम, दैनिक समर्चना तथा आलवंदार आदि स्तोत्र रत्नों को परिशिष्ट भाग में संयोजित करके इसे और भी अधिक उपयोगी बना दिया गया है। भगवान से हमारी प्रार्थना है कि भगवान इन्हें उत्तरोत्तर वृद्धि दें तथा दीर्घायु बनायें।

स्वामी बदरी प्रपन्नांचार्य

प्रकाशकीय

भारत की वीरप्रसू वसुन्धरा अनादिकाल से ही अलौकिक विभूतियों की जन्मदात्री रही है। प्रायः ये अलौकिक विभूतियाँ सन्तस्वरूप में तिरोहित रहती हैं। ईश्वर की कृपा एवं जन्मजन्मान्तरार्जित पुण्योदय से ही ये कुछ दूर तक जानी एवं समझी जा सकती हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि हम इन विलक्षण विभूतियों को तब समझ पाते हैं जब वे हमें छोड़कर परमधाम गमन कर जाती हैं। यह परम हर्ष का विषय है कि राजसी वैभव के बीच श्री राजगुरु आश्रम योगपीठ में (चित्रकूट की विख्यात उत्तर अहोविल की आचार्य गद्दी) समासीन होते हुए भी शान शौकत तथा दिखावे से पराङमुख परमतपस्वी साक्षात् ज्ञान वैराग्य एवं भक्ति की प्रतिमूर्ति राजगुरु स्वामी संकर्षणाचार्य जी महाराज एक अलौकिक सन्त है। उनके स्वरूप में विभाषित तेज, स्वभाव की सरलता, हृदय की करूणा, तपस्या पूर्ण जीवनचर्या तथा श्रीमद्भागवत की गूढ़, सरस तथा भक्ति पूर्ण प्रवचनशीलता किंवा निरन्तर- 'कदाहमैकान्तिकनित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितः' का सततवाचन सहज ही प्रतीति कराता है कि आप साक्षात् श्रीशुकदेव के स्वरूप है।

यह जी.बी. एस. परिवार कलहरा, जिला कटनी (म. प्र.) का सौभाग्य है कि हमें आपकी कृपा का भाजन बनने का परम सौभाग्य मिला है। ऐसी अलौकिक विभूति के जीवन चरित्र पर आधारित डॉ. तुलसीदास परौहा जी ने जो संस्कृत खण्डकाव्य लिखा है, वह सर्वथा प्रासंगिक तथा उपयुक्त है।

हम जैसे अकिंचन शिष्यों को यह ग्रन्थ श्रद्धालु पाठकों के हाथों तक पहुँचाने का जो सौभाग्य मिला है, उसे सविनय अपने परमपूज्य गुरुदेव के कृपा प्रसाद से प्रकाशित करते हुए परम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में मानवीय स्वभाववश जो त्रुटि हुई हो उसके लिए क्षमा चाहते हुए विद्वान् पाठकों से दिशा निर्देश सादर आमंत्रित करते हैं।

भवदीय :

जी. बी. एस. परिवार

कलहरा

जी.बी.एस.परिवार एक परिचय



श्री सुदामाप्रसाद गर्ग
ग्राम-कलहरा कटनी म.प्र.



श्री छेदीलाल पाण्डेय
ग्राम-बम्हौरी कटनी म.प्र.



श्री केशवप्रसाद अवस्थी
ग्राम-कलहरा कटनी म.प्र.

समानवी आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

ऋग्वेद 10.191.4

अर्थात्ः समष्टि एवं राष्ट्रीय हित में हम भारत के लोगों के संकल्प एवं प्रकल्प, चिंतन एवं सृजन, विचार एवं लक्ष्य एक हों जिससे हमारे साथ-साथ उन सभी भारतीय भाई-बहनों का उत्कर्ष एवं प्रकर्ष हो जो किन्हीं कारणों से कमजोर अथवा पिछड़े हुए हैं।

ऋग्वेद के इस मंत्र को क्रियान्वित करने वाला तथा भारतीय जीवन पद्धति एवं चिंतन की निसर्ग भावभूमि में वर्धमान ग्रामीण युवाओं का एक छोटा सा संगठन है जी.बी.एस. परिवार। एक कर्मयोगी की भाँति परिश्रमशील इस परिवार का प्रत्येक सदस्य आज के युवाओं के ऋग्वेद के उस मंत्र का स्मरण कराता है, जिसमें कहा गया है -

''उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः''

ऋग्वेद 10.101.1

अर्थात्ः हे समान विचार एवं समान लक्ष्य वाले मित्रों ! उठो, जागो और मिलकर कार्य करो।

राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से जुड़े हुए सतत् प्रगतिशील इस आदर्श परिवार का मंगलमय अभिनंदन।



श्री प्रभुदयाल अवस्थी
ग्राम-कलहरा कटनी म.प्र.



श्री संतोषकुमार गौतम
ग्राम-बम्हौरी कटनी म.प्र.



श्री कमलेश कुमार गर्ग
ग्राम-कलहरा कटनी म.प्र.

प्रो. योगेशचन्द्र दुबे
अध्यक्ष - संस्कृत विभाग
अधिष्ठाता- मानवकी, संगीत एवं कला संकाय
पूर्व प्रतिकुलपति-
ज.रा.विकलांग वि.वि. चित्रकूट

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ. प्र.) २१०२०४
फोन : २२४४८१ फैक्स : ०५१९८-२२४२१३

अन्तर्ध्वनि

साहित्य सर्जना प्रतिभोत्थित होती है। प्रतिभा के अभाव में इसका सम्यक् पल्लवन एवं प्रस्फुटन कदापि संभव नहीं है। अस्तु साहित्यसर्जना के लिए प्रतिभा की महती आवश्यकता होती है। पुनश्च, प्रतिभा किसी विशिष्ट देश, काल एवं परिस्थिति की धरोहर नहीं होती। वह तो निसर्गजात, निर्बन्ध एवं निःसीम होती है। उसके लिए चाहे ग्राम्यांचल परिवेश हो या सर्वसुविधासम्पन्न नागर परिवेश, चाहे अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी से संत्रस्त जीवन हो या भौतिकता के सम्पूर्ण सुखोपभोग में विहँसती रंगीन जीवन विधा। सर्वांगसुन्दर देहयष्टि हो अथवा क्रूर नियति की विडम्बना से बाधित किसी अंग विशेष की हीनता चाहे प्रौढ़ परिपक्व स्त्री, पुरुष हों या आबालबृद्ध वनिता। प्रतिभा इन सभी बंधनों को चीरती हुई माँ मन्दाकिनी की पुण्य सलिला कल-कल निनादिनी अजस्त्र धारा की तरह प्रवाहित होती रही है और रहेगी। ऐसी ही एक प्रतिभा के द्वारा आज साहित्य जगत के समक्ष एक काव्य सुमन अर्पित किया जा रहा है, जिसका नाम है डॉ. तुलसीदास परौहा तथा जिसकी प्रतिभोत्थित सारस्वत समर्चना है 'सङ्कर्षणचरितामृतम्'।

सङ्कर्षणचरितामृतम् 'खण्डकाव्य' में युवाकवि डॉ. तुलसीदास जी ने अपने काव्य वैदुष्य से आचार्य आश्रम, नयागाँव, श्रीचित्रकूटधाम में समासीन राजगुरु स्वामी सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संगोपांग वर्णन किया है। स्वामी जी के चरित बखान के माध्यम से कवि ने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों तथा प्रपन्नाचार्य जी के पूर्ववर्ती आचार्यों की समृद्ध परम्परा, स्वामी जी का परम संतत्व, महापुरुषत्व एवं महनीय चरित का गुणगान अत्यन्तनिष्ठा एवं भक्ति से किया है।

२५३ श्लोकों में संग्रथित स्वामी प्रपन्नाचार्य जी के चरित्रांकन से सम्बद्ध प्रस्तुत खण्डकाव्य को कवि ने सौविध्य की दृष्टि से पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित कर दिया है। १५८ श्लोक संख्यापर्यन्त पूर्वार्द्ध तथा १५९ से २५३ तक उत्तरार्द्ध संकेतित कियां गया है। एक परम तपस्वी, साधक, संतशिरोमणि का चित्रांकन तथा महर्षि बाल्मीकि, अत्रि, अनसूया तथा गोस्वामी तुलसीदास सरीखे ऋषियों एवं भगवान श्रीसीतारामजी की पावनभूमि श्रीचित्रकूट के परिवेश से काव्य के अन्तस् में एक आध्यात्मिक वातावरण सा उपस्थित हो गया है, जो अन्य रसों की स्थिति में भी शान्तरस को ही काव्य का अंगीरस बना देता है। अनुप्रासादि अलंकारों की बहुलता के साथ कवि ने अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, स्रग्विणी वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, पंचचामर, भुजंगप्रयात, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, गीतिका आदि प्रमुख छन्दों में सम्पूर्ण खण्डकाव्य को गद्गद्भाव से गुनगुनाया है।

युवाकवि ने सङ्कर्षणचरितामृतम् में जहाँ रस, छन्द, अलंकारों से पदों को सजाते हुए काव्य को साहित्यिक गति प्रदान की है, वहीं बड़ी कुशलता एवं चतुराई के साथ पाँच अष्टकों, स्वागतगीति (९५-९९ श्लोक) श्री रामकुमाराष्टकम् (१२५-१३३ श्लोक) चित्रकूटस्तुति (१३८-१५८ श्लोक) वनवासी रामाष्टकम् (२१६-१५८ श्लोक) एवं सङ्कर्षणाष्टकम् (२३२-२३९ श्लोक) से काव्य को सजाते हुए अंजस्र गति भी प्रदान की है। जो इस को एक अभिनव चारूत्व की सुषमा से मंडित कर देता है। किम्बहुना, खण्डकाव्य में पदे-पदे वर्ण विन्यास, शब्द विन्यास, वाक्यविन्यास एवं भाव विन्यास में कवि का काव्य कौशल स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ध्वनि एवं व्यंजना का स्फुट परिज्ञान तो स्पष्टतः लक्षित नहीं होता तथापि रसादि की स्थिति में व्यंजकता का निदर्शन हो जाता है। उक्त परिदृश्य में अवलोकन करने पर माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुणों की स्थिति तथा पांचाली; गौड़ी एवं वैदर्भी रीतियों का भी यथोचित एवं यथामति युवाकवि ने काव्य में सन्निवेश करने का स्तुत्य

प्रयास किया है।

प्राकृतिक सुषमा की शीतल, सुखद एवं मनोहारी छटा के मध्य ही कोई काव्य विलसता है। कवि निसर्गत: प्रकृतिप्रेमी होता है। इसीलिए उसकी कविता में प्रकृति के विभिन्न अंगों उपांगों, उपादानों एवं बिम्बों का चित्रण अवश्यमेव दृष्टिगोचर होता है। युवाकवि तुलसीदास का कोमल मन भी प्रकृति की गोद में क्रीड़ा हेतु मचलता रहता है। यही कारण है कि सङ्कर्षणचरितामृतम् में स्थल-स्थल पर प्रकृति के विभिन्न उपादानों के वर्णन में कवि की लेखनी का अजस्र प्रवाह दृश्यमान है। विशेषत: चित्रकूट स्तुति एवं वनवासीरामाष्टकम् में चित्रकूट की नदियों पर्वतश्रृंखलाओं वनस्पतियों तथा रंग बिरंगी पर्वत शिलाओं एवं भगवान राम के पद रज रंजित रजकण को शिरोधार्य करने तथा यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को मन में संजोने के लिए कवि प्रेरित करता है-

श्रीरामसंकीर्तनमेव नित्यं
लतावितानेभ्रमरादिगीतम्।
कदम्बजम्बूपनसाम्रकूटं
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥

''नहि तेजसां वय: समीक्षते'' को चरितार्थ करते हुए डॉ. तुलसीदास जी काव्यकला के साथ-साथ शास्त्र का अप्रतिम ज्ञान भी रखते हैं। कभी वह वेदों, वेदांगों, उपनिषदों, पुराणों एवं स्मृतियों आदि की चर्चा करते हैं तो कभी दर्शन के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करते हैं। संसार की नि:सारता, सांसारिकव्यथा, दु:ख, द्वंद एवं ईश्वर की सर्वव्यापकता ''विश्वंविष्णुसमुदभूतंसर्वंविष्णुमयं जगत्'' के साथ-साथ देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त एवं देह प्रपंच आदि दार्शनिक तथ्यों को सहज प्रवाह में देखा जा सकता है। (६८-७५)-

शरीरं हृषीकाणि नाहं कदापि

मनोनैव चाहं न बुद्धिर्न चित्तम् ।
निरस्ताखिलत्याज्य देहप्रपंच:
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदास: ॥ ७४ ॥

किं बहुना स्वामी प्रपन्नाचार्य जी पर आश्रित काव्य होने के कारण संपूर्ण काव्य में विशिष्टाद्वैतवाद दर्शन का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

डॉ. तुलसीदासजी एक संस्कारी कवि हैं, इसलिए कवि का संस्कारी मन विवश कर देता है संस्कृत, संस्कृति एवं संस्कारों की पुरजोर वकालत करने के लिए। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि का एकमात्र ध्येय एवं गेय संस्कृत और भारतीय संस्कृति ही है। संपूर्ण काव्य में कवि अनेकश: इसकी रक्षा, सुरक्षा एवं संवर्धन की दुहाई देता है -

राष्ट्रभाषा भवेत् संस्कृतं मे
संस्कृतिर्विश्ववन्द्या पुनर्मे।
सन्ततं चिन्तनं तादृशे ते
ब्रूमहे स्वस्तिवाचं नमस्ते ॥ ९९ ॥

भारतीय संस्कृति के मूलाधार वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ-चतुष्टय, षोडश संस्कार एवं अन्यान्य मानवीय मूल्यों, साम्प्रदायिक सौहार्द, भ्रातृभाव, परोपकार एवं वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे उदात्तभावों की ओर कवि प्रेरित करता दिखाई पड़ता है। भारत, भारती और भारतीयता तो उसके रोम-रोम में बसी जान पड़ती है -

भारतं भारतं भारता संस्कृति-
र्भारतं लोकमात्रं वचः संस्कृतम् ।
शाश्वतं भासतां विश्वमात्रम्पुन-
श्चैकनीडे मुदा राजतां राजताम् ॥९१॥

युवा कवि जहां एक ओर भारतीयसंस्कृति, प्राचीन मूल्य एवं परम्परा के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए तड़पता है वहीं ''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'' के आधार पर भारतवर्ष के आधुनिक विकास के विषय में भी चिंतित है। पश्चिमी सभ्यता का विरोध, आतंकवाद का विरोध तथा सत्तालोलुप एवं भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए राजेनेताओं का विरोध करते हुए कवि की आहत राष्ट्रीयभावना प्रत्यक्ष दिखांई पड़ती है। कवि ईश्वर से भारतराष्ट्र की बहुविध सम्पन्नता हेतु प्रार्थना करते हुए रामराज्य के द्वारा लोकमंगल की कामना करता है।

इस प्रकार अत्यंत लघुकलेवर के इस काव्य में भाव एवं कलापक्ष का इतना मञ्जुल समन्वय कविवर तुलसीदास जी ने जो किया है निःसन्देह वह श्लाघनीय है। सम्भव है कि एक शोध निर्देशक एवं सहकर्मी के रूप में डॉ. तुलसीदास एवं उनकी कृति के प्रति कदाचित् व्यामोह रंजित भाव प्रदर्शित हो रहा हो तथापि मैं विश्वस्तचित्त हूँ कि संस्कृत जगत् के मौलिक रचनाकार एवं मूर्धन्यमनीषियों का स्नेह भाजन हो कर यह नवोदित युवा कवि भविष्य में महाकवि का भी गौरव प्राप्त करेगा।

शुभेच्छु -
प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

Prof. Rajendra Mishra
M.A., D. Phil. (Alld) D. Litt. (Shimla)
Ex. Vice Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi - 221002 (U.P.) INDIA

Gram : "SHRUTAM"
Phones :
Office : 0542-2204089
2204213
Resi. : 2206617
Fax : 2206617

नान्दीवाक्

डॉ. तुलसीदासपरौहा-प्रणीतं सङ्कर्षणचरितामृताऽख्यं खण्डकाव्यं समधीत्य चित्तममन्दानन्दसमुच्छ्वसितं जातम् । काव्यमिदं श्रीमच्चित्रकूटस्थाचार्याश्रमसंरक्षकान् परमाराध्यान् तपोमूर्तीन् श्रीमत्सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्यवर्यान् सम्यक्तया प्रकाश्य परिचाययति । त्रिपञ्चाशदुत्तरशतद्वयपद्यविलसितेऽस्मिन् काव्ये श्रद्धोत्कण्ठाभक्ति विनयाऽनुराग-भावमदिरो युवा कविः सप्रणयं काव्यनायकं सकुटुम्बं सपरिकरं ससम्प्रदायं ससद्गुणव्यतिकरं सपार्थिवकृत्याजातञ्च लोकसमक्षं समुपन्यस्यति । चरितवर्णनैः सार्धमेव काव्येऽस्मिन् क्वचिच्चित्रकूटस्तवः क्वचिद्वनवासि-रामचन्द्रस्तवः क्वचित्सङ्कर्षणाचार्यस्तवः क्वचिदा-चार्यमन्दिरस्तवः क्वचित्पुनर्देववाण्याः भारतीयसंस्कृतेश्च हृदयाह्लादकारी प्ररोचनेति सम्भूय परिलक्ष्यन्ते ।

वस्तुतः साहित्यदर्पणकारदृष्ट्या वर्ण्यविषयसाम्यगौरवेण काव्यमिदं कोशकाव्यपरिधौ महीयते । यतो हि सर्वाण्येव वर्णनानि, प्रधानान्यप्रधानानि वा, संवादीन्येव दृश्यन्ते । तपस्वी धर्माचार्यः, तीर्थस्थलानि, मन्दिराणि, आश्रमाः, संस्कृतपाठशालाः, गोशाला, धर्मशालाः, अध्ययनाऽध्यापनम् अन्नक्षेत्रप्रवर्तनम् लोकोपकारकार्यजातमिति सर्वमपीदं समानप्रवृत्तिकमेव परिलक्ष्यते पारलौकिकश्रेयस्त्वसिद्धिसाधनभूतत्वात् । अतएव समेषामेषां विषयाणामेकस्मिन्नेव काव्ये सरसवर्णनं तन्निश्चप्रचं कोशकाव्यमेव विदधाति, कोशः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योऽन्यानपेक्षकः ब्रज्याक्रमेण रचित इति लक्षणत्वात् । सजातीयानामेकत्र सन्निवेशो ब्रज्याचेति साहित्यदर्पणोक्तत्वात् । यद्यपि काव्येऽस्मिन् व्रज्याक्रमेण नाऽवलोक्यते कापि विषयविभागव्यवस्था तथापि कोशकाव्यत्वेऽस्य न कापि संशीतिः ।

सम्प्रति कवित्वकौशलमभिलक्ष्य किञ्चिदुच्यते । कविरयं सांस्कारिककाव्यप्रतिभापटीयान् व्युत्पत्तिनिष्णातश्चेति सिद्धम् । प्रतिभाबलेनाऽसौ सर्वथा क्षमोऽपूर्ववस्तुनिर्माणे। तस्येदंवैशिष्ट्यं काव्ये पदे-पदे स्फारीभूतं परिलक्ष्यते। तद्यथा-

सारल्यं परिलक्ष्यते हि नितरां शीलेषु यस्याऽनिशं
माधुर्यं समलङ्करोति सततं वाणी च यस्याऽनघा।
तारुण्यं भजते तपोऽनवरतं चर्यागतं नित्यश
स्तं गोविन्दपदारविन्दसदृशं भक्त्या नमस्कुर्महे ॥६९॥

अत्र शीलेषु सारल्यं, वाणीषु माधुर्यं, चर्यागते तपसि तारुण्यमिति त्रिष्वपि वैशिष्ट्यवर्णनेषु किमपि विलक्षणमेव लोकोत्तरत्वं प्रतिभोत्थं परिलक्ष्यते।

प्राक्तनं स्तोत्रसाहित्यमपि पुष्कलमधीतं कविनेति स्पष्टं जायते काव्यपरि-शीलनेन। यथा शङ्कराचार्यपादानां स्तोत्रे कापि हृद्यऽनवद्याऽभिव्यक्तिशैली न तातो न माता न बन्धुर्न भ्राता न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्तेति तामेव वर्णनशैलीमनुहरन्नयमपि कविः सरलसरलैः पदबन्धैः स्वभक्तिभावं द्रढयन् स्वनिरीहत्वं प्रकाशयते। तद्यथा -

अहं नैव विप्रो न च क्षत्रियोऽहं न वैश्यो न शूद्रो न वै चान्त्यजोस्मि।
अहं वैष्णवस्तत्पदाम्भोजभृङ्गः सदा विष्णुपादाब्जदासाऽनुदासः ॥७०॥
न माता पिता मे न बन्धुर्न मित्रं न मे क्वापि सङ्गो न भङ्गो न रङ्गः।
अहंत्यक्तसंसारकौटुम्बबन्धः सदा विष्णुपादाब्जदासाऽनुदासः ॥७१॥

काव्येऽस्मिन्श्रीमद्रामानुजाचार्यसम्प्रादायानुगतानां विशिष्टाद्वैत-मतानुयायिनां वैष्णवानां काऽपि चित्रकूटस्था श्लाघीयसी परम्परा समुपन्यस्ता युवकविना । परम्परायामस्यां विश्रुतयशसोऽनेके धर्माचार्याः सञ्जाता येष्वन्यतम आसीद्राजगुरुपदवाच्यः श्रीमत्सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्यः । पूर्वाश्रमे सरयूप्रसादशुक्लनामाऽयं जनश्चित्रकूटाञ्चलस्थचोरमारीग्रामवास्तव्यस्य कमलाप्रसादशुक्लस्य पुत्रः, हीरालालशुक्लस्य पौत्रः श्रीगौरीशङ्करशुक्लस्य

च प्रपौत्र आसीत्। बालयोगिशुकदेवाऽवतारभूतोऽयं महामुनिस्सङ्कर्षणाचार्य एव काव्यस्यास्य चरितानुगेयो नायकः। विविधशास्त्रपारङ्गतः प्रत्यक्षमक्षिलक्ष्यीकृतसकलतीर्थः षड्दर्शनपारदृश्वा हिमहारनीहार-पारदडिण्डीरावदातचरितो जितकन्दर्पोऽदर्पोऽचिरोपरूढयौवनोऽयमेव युवकस्सरयूप्रसादो राजगुर्वाश्रमस्थाचार्यमन्दिराधिपतिभिः श्रीमद्भिर्बलराम-देशिकाचार्यैः प्रदत्तदीक्षः सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्यसंज्ञया लोकप्रख्यातो जातः।

लघुकलेवरेऽपि काव्येऽस्मिन् कविवर्यः परौहोपाह्वस्तुलसीदासः ज्ञाताऽखिलवृत्तान्तः श्रीमत्सङ्कर्षणविषयकं समग्रमपि चरितामृतं यथाक्रमं प्रस्तौति काव्येऽस्मिन् सौशब्द्यं समुल्लसत्याद्यन्तम्। सङ्कर्षणप्रपन्नाचार्य-विहितं लोकोपकारवृत्तं विज्ञाय महान् प्रमोदस्सञ्जायते।

वस्तुतोऽर्वाचीनं संस्कृतकाव्यं तुलसीदासप्रतिभैरेव परिपक्वलेखनीकैः कविप्रवरैः प्रत्यभिज्ञायते। भूयो-भूयोऽभिनन्दाम्यहं तत्काव्यप्रतिभां तच्छब्द-शास्त्रीयं पाण्डित्यं तच्छन्दोविचितिपारगत्वञ्च। आशासे च यद्-भाविन्यनेहसि कविरयं स्वोपज्ञप्रौढरचनाभिः वागधिष्ठात्रीमनुरञ्जयिष्यति।

शिमला
मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः
१३.१०.२००७ ई.
पूर्वकुलपतिः

प्रो. मिथलाप्रसाद त्रिपाठी
निदेशक
कालिदास संस्कृत अकादमी

कालिदास संस्कृत अकादमी
विश्वविद्यालय मार्ग, उज्जैन 456010 (म. प्र.)
Ph.: 0734-2515404, 2524051 Fax: 2515404

काव्यानुशंसा

काव्यसिसृक्षुरियं कवयित्री प्रतिभा तुलसीदासीया श्रीसंकर्षण-चरितामृतरूपिणी बुधवनविहारिणी विबुधवदनविलासिनी जायतामिति कामये कामदं कामिकल्पवृक्षं श्यामगौरवान्वितं किमपि चित्रं महःकूटं चित्रकूटस्थं सुरनरमुनिभिरीडितांघ्रिसरोरुहं श्रीराममेव । चरितमिदं भक्तिभूमिकर्षकसुहृदयमनांसि संकर्षणधियाऽर्पयति प्रपन्नतामेव वर्णनयाऽनयाऽसक्तविदुषो बोधयत्यपि 'अहं त्यक्तसंसारकौटुम्बबन्धः' 'अहं वैष्णवस्तत्पदाम्भोजभृंगः' सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः इत्यादिभिर्बन्धैः सहसा रभसा भावितम् । एवमेव संसारसिन्धोस्तरणैककूटं, श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये' चित्रकूटाचलस्य महिमानं व्यावृणोदयं कविः। चरितामृतेऽत्र 'सन्ततं रामराज्यं प्रभो राजताम्' 'भूतले भारतं भारतं शोभताम्' 'संस्कृतिर्भारतीयैव नन्नन्द्यताम्' 'विश्वबन्धुत्वभावं सदा रक्षतात्' 'रघुवरनतोऽहं द्रवतु मे' इत्यादिभिः पादान्तवचनैः कवेः प्रवृत्तिरुद्भासिता। प्रतीयते यत्कविरयं भक्तिभावनायाः कीर्तनार्थमलीलिखत्काव्यमिदं परन्तु लोककल्याणबुद्ध्या सिसृक्षा प्रकटीचकारान्तिमे पद्ये। गुरुचरितव्याजेन वैष्णवमार्गप्रशस्तिः चित्रकूटस्तुतिः भगवतः गुरोश्च कीर्तिवैजयन्ती काव्येऽत्र राराज्यते । पद्यबन्धवैविध्यं, भावप्रकाशनचातुर्यं पदचयनचारुत्वं, अनुप्रासादिभिरलंकारसौकुमार्य गुणगणनिभालनपुरःसरगुणाख्यानमत्र विजृम्भते निभृतम्। लघुकायेऽपि काव्ये तरंगावलयः कवेर्भावितसंसृतिमेव प्रकाशयन्ति।

वैष्णवाचार्यशिरोमणिभूषितानामाचार्यसङ्कर्षणपादानांचरिताब्धिरत्नमंजूषाञ्चलीकृतपद्यरत्नानां ज्योतिः पाठकानां मनांस्यपि प्रकाशयति

श्रोतृणामपि तथैवान्तस्तमोनुदम् । श्रीरामचरणानुरागिणां चित्रकूट-निष्ठप्रतिष्ठितानां आचार्यपरम्परावल्लरीकुसुमभृंगायितानां सुमनसां विदुषां मनोमोदाय तोषाय चैकपद एवायं पद्यबन्धस्तुलसीदासस्य जागर्ति।

सङ्कर्षणस्यचरितामृतसिन्धुरत्न-
मालाञ्चिता विविधभावसमन्विताऽत्र।
काव्यावलिः सुकविदेवगिरासमर्चा
सम्पादयेत् तुलसिदासकृतेऽनुशंसा।

शुभेच्छुः
त्रिपाठिमिथिलाप्रसादः

डॉ. मनमोहन उपाध्याय :
उपाध्यक्ष : (राज्यमंत्री दर्जा)
मध्यप्रदेश संस्कृत बोर्ड

कार्यालय : तुलसीनगरम् भोपालम् (म. प्र.)
☎: (०७५५) २५५७५६३, २७६६२५७
निवास : सीनियर एच.आई.जी. २४६
कटारा हिल्स भोपाल
☎: (०७५५) २४१५७६८

काव्यप्रशस्तिः

"सङ्कर्षणचरितामृतम्" नाम खण्डकाव्य माद्यन्तमवलोकितम्। खण्डकाव्यस्य कथावस्तु प्रेरणास्पदं तथोर्जादायकं विद्यते। एतदधीत्य अन्येपि युवजनाः जनसेवार्थं परोपकारार्थञ्च प्रवृत्ताः भविष्यन्तीत्यस्ति मे निरत्ययः प्रत्ययः।

युवकविना डॉ. तुलसीदासपरौहामहोदयेन लिखितं काव्यमिदमन्यान्ययुवसंस्कृतविदुषः प्रेरणादायकं भविष्यति। काव्यस्यास्य सरला सहजा च शैली जनमानसे प्रभावशीला विद्यते।

अहं विश्वसिमि यद् डॉ. परौहामहोदयः संस्कृतसाहित्यरचनाक्षेत्रे ख्यातिं यशश्च प्राप्स्यति। अहं मम मित्रस्य डॉ. तुलसीदासपरौहा महोदयस्योज्ज्वलभविष्यते आशान्वितोऽस्मि।

मनमोहन उपाध्याय

॥ पुरोवाक् ॥

सङ्कर्षणचरितामृतं नाम काव्यबन्धश्चित्रकूटस्थाचार्याश्रमयोगपीठाधिपतीनां राजगुरुस्वामिसङ्कर्षणप्रपन्नाचार्याणां संक्षिप्तजीवनगाथा। लसन्ति काव्यबन्धे शिखरणीशार्दूलविक्रीडितादिषोडशछन्दांसि, अंगीरसःशान्तः, प्रसादगुणवैदर्भीरीती च। पूर्वार्द्धोत्तरार्द्धभागद्वये विभक्तेऽस्मिन् काव्ये विशिष्टाद्वैतवादः (श्लोक 68-75) राष्ट्रमङ्गलम् (85-91) स्वागतगीतं (95-99) श्रीरामस्तोत्रम् (श्लोक 125-133) श्रीचित्रकूटस्तुतिः (श्लोक 135-158) प्रभृति नानाविधो विषयविशेषोऽपि सुधीपाठकेभ्यः प्रणीतः। स्वामिवर्याणामन्तेवासिभ्यः श्रीसङ्कर्षणाचार्याष्टकं, श्रीबदरीप्रपन्नाचार्याष्टकञ्च विशेषतयेह प्रणीते।

काव्यस्यास्य प्रणयने येषामपि सहयोगः, प्रेरणा, आशीर्वहितुस्तेषां माधमर्ण्यं स्वीकुर्वन्नहं सर्वप्रथमं मातापितरौ प्रणमामि ययोर्निर्हैतुक स्नेहसिक्ताशीभिःकार्यमेतत् संपादितुमर्होऽभवम्। समर्पयेऽहं प्रणतीर्जगद्विश्रुतानां श्रीगुरुचरणानां संस्कृतवाङ्मयपारदृश्वनामदूष्यवैदुष्यवतां स्वामिश्रीरामभद्राचार्याणां चरणयोर्येषां कृपाप्रसादेन लब्ध्वा काव्यकलाकलैकांशमेव प्राविशं नियतिकृतनियमरहिते काव्यरचनाजगति।

कृतज्ञोऽस्मि कालिदाससंस्कृताकादम्या निदेशकपदालङ्कुर्वतां प्रो.मिथिलाप्रसादत्रिपाठिनां यैः काव्यबन्धमिमं निरीक्ष्य स्वकीयाभिमतिर्दत्ता, येन न केवलमहमेवापितु ममसदृशाःनैके युवकवयः संस्कृतसाहित्यरचनायाः कण्टकाकीर्णवीथीमितोऽप्यधिकमुत्साहेन कौशलेन किञ्च दार्ढ्येन ससुखं चलितुं शक्ष्यन्ति। धन्यवादान् ददामि वयस्यप्रवराय मध्यप्रदेशसंस्कृतबोर्ड-उपाध्यक्षवर्याय (राज्यमन्त्रिणे) स्वनामधन्याय शुभ्रयशोकौमुदीवते श्रीमते डॉ.मनोमोहन-उपाध्यायवर्याय येन यथाकालं निर्दिष्टः प्रेरितः किंवा प्रादिष्टः काव्यरचनाजगति प्रविश्याहं काव्यमिदं कृतवान्। तेन काव्यप्रशंसायां

स्वीयाभिमतमपि प्रदत्तं तेनाहमुपाध्यायवर्यस्याधमर्ण्यं स्वीकरोमि। विज्ञापये कार्तज्ञवचांसि संस्कृतसाहित्याकाशशारदीयविधूनां वाराणसीस्थ-सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालस्य पूर्वकुलपतिमहोदयानां प्रो.अभिराजराजेन्द्रमिश्रवर्याणां यैर्मम लघीयमपि काव्यं स्वीय सारस्वतकृपादृष्ट्या विलोक्य न्यूनतास्वपि कमपिगुणं गुणगणं वा विलोक्य स्वकीयाभिमत्या प्रशस्तम्। प्रणतिपुरःसरमाधमर्ण्यं स्वीकरोमि गुरुवर्याणां जगद्गुरुरामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालस्य पूर्वप्रतिकुलपति-महोदयानामदूष्यवैदुष्यवतां प्रो. योगेशचन्द्र दुबे महोदयानां यैः सततं प्रेरितो नियोजितश्चाहं सततं सारस्वतमुपासे। ते काव्यमिदं स्वीयसारस्वतलोचनेन समालोक्य ''अन्तर्ध्वनि'' इत्याख्य लेखेऽविशेषमपि विशेषीकृत्य काव्यगतमशेषमपि पक्षं प्राकाशयन्। वर्षद्वयस्याल्पावधावेव मादृशमल्पमतिमन्तेवासिनं समग्रमपि वैयाकरण सिद्धान्तं सानन्दं साम्रेडञ्च सम्पाठ्य सारस्वतजगति सानन्दं परिभ्रमणाय नवोत्साहः, नवं बलं, नवं लक्ष्यञ्च दत्तवन्तस्ते सन्ति देवतुल्य समाराधनीयाः पदवाक्य-प्रमाणपारावारीणाः गुरुचरणाः श्रीत्रिविक्रमाचार्यत्रिपाठिनः। तेषामाधमर्ण्यं शब्दैर्व्यञ्जितुं न पारयति मे भारती। अतो मया केवलं प्रणामा एव निवेद्यन्ते।

जी.बी.एस. परिवार कलहरां प्रति धन्यवादान् ज्ञापये यः काव्यबन्धमिमं प्राकाशयत्। इह सहयोगं दत्तवत्सु ममाग्रजौ श्री उमाप्रसादसनदकुमारौ सहधर्मिणी श्रीमती प्रभापरौहा तनूजौ अतुलकृष्णमृदुलकृष्णौ च धन्यवादार्हाः। श्रीत्रिभुवनसिंहाय (शोभा प्रिंटिंग प्रेस कटनी) प्रदीयन्ते शुभाशिषः येनाल्पीयसैव कालेन काव्यमिदं मुद्रापितम्। अहं सङ्कर्षणचरितामृतं विलिख्य महतीं प्रसन्नतां संतोषं गौरवञ्चानुभवन् विरमामि।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

विदुषांवशंवदः
डॉ. तुलसीदास परौहा

॥ श्रीः ॥

॥ सङ्कर्षणचरितामृतम् ॥

पूर्वार्द्धभागः

श्यामं श्यामलकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं,
श्रीराधामुखपद्ममञ्जुहसनं गोपीसहस्रावृतम्।
कामक्रोधमदादिदोषदलनं सङ्कर्षणाराधितं
श्रीकृष्णं तुलसीसुवासितपदं भक्त्या नमस्कुर्महे ॥ १ ॥

अर्थ - जिन्हे कृष्णवर्णीय होने से श्याम कहा जाता है, जो अपनी श्यामलकान्ति से सुशोभित हो रहे हैं, जिनका मुखचन्द्र चन्द्रमा की भांति स्निग्ध एवं मनोहर है, जो श्री राधिका जी के मुखकमल का मधुर हास हैं, जो सोलह हजार गोपियों (नित्य शुद्ध बन्धन मुक्त जीवात्माओं) से घिरे हुए हैं, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर जैसे दोषों को नष्ट करने वाले हैं, जो संकर्षण अर्थात् शेषनाग द्वारा आराधित हैं अथवा स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी द्वारा आराधित हैं, जिनके चरण तुलसी दल से सुवासित हैं अथवा जिनके युगलचरण ग्रन्थकर्ता तुलसीदास के लिए अभीष्ट निवास हैं, ऐसे आद्यशक्ति श्रीराधा से विशिष्ट भक्तों के कष्टों का कर्षण करने से कृष्ण नाम से भक्तों द्वारा परिगीत भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ।

रामं पद्मदलाभिरामवदनं श्रीजानकीजीवनं,
मेघश्यामलकम्रकान्तिनिकरैर्विद्योतयन्तं भुवम्।
भक्ताभीष्टकरं सदा सुखकरं कामारिसेव्यं विभुं,
नौमि श्रीभरतादिसेवितपदं पिङ्गाक्षगीतं प्रभुम्॥ २॥

अर्थ –जीवमात्र को सुख प्रदान करने से जिन्हें राम कहा जाता है, जो नील कमल की भाँति अत्यन्त स्निग्ध एवं सर्वतः सुन्दर लगने वाले देहधारी हैं, जो जनकतनया श्रीसीताजी के जीवनाधार अर्थात् पति हैं, जो नवीन जल से भरे हुए श्यामल मेघ की भाँति सुन्दरतम शोभा निकरों से सम्पूर्ण पृथ्वी को सुशोभित कर रहे हैं, जो भक्तों के अभीष्ट को पूरा करने वाले हैं, जो सर्वदा सुखकारी हैं, जो भगवान् शंकर से पूजित एवं सर्वव्यापक हैं, श्रीभरत, लक्ष्मणादि अनुज भ्राताओं द्वारा सेवित हैं, जिनका हनुमान जी सतत गुणगान करते हैं, ऐसे सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्मानन्दपयोधिनिर्मलपयःपेपीयमानं सदा,
भक्तिज्ञानविभूतिमेव परमं ध्येयं सतो विग्रहम्।
नानाशास्त्रविचक्षणं मुनिवरं वन्दे जगद्विश्रुतं,
वैदुष्यामृतसागरं गुरुवरं श्रीरामभद्राभिधम्॥ ३॥

अर्थ – ब्रह्मानन्दरूप महासागर के निर्मल जल को निरन्तर एवं अतिशय पान करने वाले, भक्ति एवं ज्ञान की साक्षात् विभूति, परमध्यातव्य, सत्वगुण के साक्षात् विग्रहभूत, वेद, पुराण, शास्त्रादि ज्ञान में अवगाहन करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ, अलौकिक व्यक्त्वि के रूप में जगद्विश्रुत वैदुष्यरूपी अमृत के सागर अर्थात् अप्रतिम ज्ञानी परम पूज्य श्री गुरुदेव जगद्गुरु रामान्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज़ की मैं अत्यन्त भक्तिभाव से वन्दना करता हूँ।

श्रीमद्रामभरोषमञ्चितपदं वैराग्यमूर्तिं बुधं,
जातं विप्रविभूषणं स्वपितरं वंशे परौहाभिधे।
विष्णोर्भक्तिपरायणं हरिकथां जेगीयमानं परां,
वन्दे संस्कृतजीवनं पुनरहो सत्कर्मनिष्ठं परम्॥ ४॥

अर्थ – पंक्तिपावन सरयू पारीण ब्राह्मणोत्तम परौहा (द्विवेदी) वंश में जन्मधारण करने वाले, लोक संग्रह मुक्त, जन-सामान्य द्वारा सम्मानित, श्री विष्णु भगवान् की उपासना में सतत् संलग्न, श्रीमद्भागवत आदि हरिकथा के उद्गाता, सुसंस्कृत जीवन को धारण करने वाले तथा वेदविहत कर्मों में निष्ठा रखने वाले अपने परम पूज्य पिता श्रीरामभरोष परौहा की अत्यन्त श्रद्धावनत भाव से वन्दना करता हूँ।

आयासो बहुधा कृतः पुनरहो मातृत्वमाख्यापितुं,
वाणी रोधनकं मनो विकलतां चेतश्च जाड्यं गतम्।
गीता वेदपुराणशास्त्रनिचयैर्माता परं दैवतं,
मौनीभूय ततो हि नौमि जननीं श्रीदेवयानीमहम्॥ ५॥

अर्थ – मैं जब भी मातृत्व की आख्या करना चाहता हूँ तब अनेक बार प्रयास करने पर भी मेरी वाणी अवरुद्ध हो जाती है, मेरा मन विकल हो जाता है, मेरा विवेकशील चित्त जड़ता को प्राप्त हो जाता है। वेदों, पुराणों, शास्त्रों तथा अन्य धर्मग्रन्थों में जिसे परा देवता माना गया है। वह शब्दों के संकुचित अर्थ से निर्वचनीय कैसे हो सकती है ? अस्तु मैं मौनावलम्बन धारण कर मातृत्व की प्रतिमूर्ति अपनी प्रातः स्मरणीय माँ श्रीमती देवयानी को अत्यन्त श्रद्धाभाव से प्रणाम करता हूँ।

श्रीसङ्कर्षणतुष्टये च जगतो भूत्यै महत्यै सतां,
पुष्ट्यै आत्मन अम्बिकाजनकयोः प्रीत्यै मया भावितम्।
श्रीसङ्कर्षणजीवनं मतिमतां राज्ञां समामन्त्रितं,
याथातथ्यविभाषितञ्च तुलसीदासेन जेगीय्यते॥ ६॥

अर्थ - अनन्तसमलंकृत राजगुरु स्वामीसंकर्षणप्रपन्नाचार्यजी की प्रसन्नता हेतु इस असार संसार में गृहीतजन्मा जनसामान्य के परममंगल के लिए, अपनी आत्मिकपुष्टि एवं संतुष्टि के लिए अपने पूज्य माता-पिता की प्रसन्नता के निमित्त, श्रीसंकर्षणप्रपन्नाचार्यजी का वन्दनीय जीवनचरित जो विद्वानों, राजा-महाराजाओं, लक्ष्मीपुत्रों आदि से अभिवादित है तथा जिसे मैंने याथाततथ्य अवलोकन एवं विचार करके अपने अन्तःकरण में भावभावित किया है, उसे ही मुझ ग्रन्थकर्ता डॉ. तुलसीदास परौहा द्वारा पद्यकाव्यात्मक विधा में गाया जा रहा है।

सर्वथा पावनं पेयं सङ्कर्षणकथामृतम्।
पायं पायं पुनः पातुं सन्ततं को न वाञ्छति॥ ७॥

अर्थ -अनंत समलंकृत श्री श्री १००८ राजगुरु स्वामीसंकर्षणप्रपन्नाचार्य जी का जीवनकथारूप अमृत अत्यन्त पवित्र निष्कलुष तथा मधुरतम होने से बारम्बार पीकर भी अतृप्त होने के कारण पुनः पुनः उसका पान करते रहना किसे अच्छा नहीं लगता है।

चरितं रघुनाथस्य लोकमङ्गलकारकम्।
एकैकमक्षरं यस्य पुंसां पातकनाशनम्॥ ८॥

अर्थ - लोकलोचनाभिराम श्रीरघुनाथजी का जीवनचरित अथवा ईश्वर का साक्षात्कार कराने वाले गुरुदेव का जीवनचरित, लोक का मंगल करने वाला होता है। उसका एक-एक अक्षर मनुष्यों के महापातकों को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

रघुर्जीव इति ज्ञेयो नाथः स्वामीति विश्रुतः ।
तेन सद्गुरुदेवोऽपि रघुनाथः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

अर्थ - शास्त्रों में रघु शब्द जीव का वाचक तथा नाथ शब्द स्वामी का वाचक माना गया है। इसीलिए गुरु पद से व्यवहृत होने वाले महान् व्यक्तित्व को भी रघुनाथ कहा गया है, क्योंकि उसकी कृपा जीवमात्र (शरणागत) पर निष्कारण भाव से बरसती रहती है।

अतो नारायणो देवो भूतये प्राणिनां सदा ।
करुणासिन्धुचिन्मूर्तिं प्रैषयद् भूतले गुरुम् ॥ १० ॥

अर्थ - अज्ञान की गहन निशा में सोये हुए प्राणियों को जगाने के लिए तथा उसे ज्ञानज्योति प्रदान करने के लिए ही आदिदेव भगवान् श्रीमन्नारायण प्रभु ने प्राणियों के कल्याणार्थ करूणा के सागर एवं ज्ञान के साक्षात् विग्रह गुरुदेव भगवान् को इस संसार में भेजा है।

योगमूर्तिस्तपोमूर्तिः शान्तिमूर्तिश्च वैष्णवी ।
आगता लोकभूत्यर्थं स्वामिसङ्कर्षणी तनुः ॥ ११ ॥

अर्थ - इस संसार के परममंगल एवं सन्मार्ग का पथ प्रदर्शित करने के लिये योग, तपस्या एवं शान्ति की साक्षात् मूर्ति परमवैष्णव 'राजगुरु'स्वामी संकर्षण प्रपन्नाचार्य जी महाराज, इस धराधाम पर अवतरित है।

एषा पद्मदलाकारा मेखलीभूतसागरा ।
वसुधा नववर्षेषु प्रविभक्ता मनीषिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ - देवताओं, मुनियों एवं महापुरुषों के अवतारों से प्रथित यह पृथ्वी कमलपत्र की भांति गोल है तथा चार समुद्र इसके चारों ओर होने से मानो करधनी की भूमिका का निर्वहण कर रहे हैं, यह मण्डलाकार पृथ्वी विद्वानों के द्वारा नव वर्षों में विभाजित की गयी है।

भारतं भारतं तत्र सन्ततं देवगीतकम् ।
अहो धन्यतमा चैषा भारतीया वसुन्धरा ॥ १३ ॥

अर्थ - पृथ्वी के नौ खण्डों में भारत नामक एक वर्ष है, जो महापुरुषों की अवतार भूमि होने से देवी-देवताओं द्वारा समादृत एवं परिगीत है। इस भारतीय वसुन्धरा की वन्दना करते हुए देवतागण कहते हैं - अहो यह भारत की भूमि धन्य है। क्योंकि..................

भारते वैष्णवी भक्तिर्भारते सन्ति वैष्णवाः ।
भारते तुलसीवृन्दं गङ्गातोयञ्च भारते ॥ १४ ॥

अर्थ - भारत देश में ही भगवान विष्णु की पराभक्ति तथा जगद्गुरु रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैतवाद के पोषक एवं अनुवर्ती श्रीवैष्णवजन निवास करते हैं। इतना ही नहीं इस महान् देश में तुलसी तथा गंगाजल अपनी निसर्गता के साथ प्राणिमात्र के लिये सहज सुलभ है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची पुरी तथा ।
वृन्दावनं परं धाम चित्रकूटञ्च भारते ॥ १५ ॥

अर्थ - मर्यादा पुरुषोत्तम की अवतारभूमि श्रीअयोध्याधाम, श्रीद्वारिकापुरी, श्रीकृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन तथा श्रीराम की कर्मभूमि एवं ऋषियों की तपोभूमि श्रीचित्रकूटधाम इस भारत देश के गौरव की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

अमलानामवधूतानां भक्तानां पृष्ठतो हरिः ।
अनुगच्छँल्लभ्यते सद्भिर्यस्यां सा भारता मही ॥ १६ ॥

अर्थ - निष्कलंक चरित्र वाले अवधूत भक्तों के पीछे घूमते हुए भक्तवत्सल भगवान् श्रीमन्नारायण, जहाँ भक्तों, शरणागतों, श्री वैष्णवों द्वारा सहजता से देखे जाते हैं। उसे ही इस संसार में भारत भूमि के नाम से जाना जाता है यह ईश्वर की अवतार भूमि तथा लीलाभूमि होने से अत्यंत महान् है।

जडभरतो महाज्ञानी ब्रह्मवेत्ता तथा शुकः ।
युगद्रष्टा च वै व्यासो यत्र रामानुजो मुनिः ॥ १७॥

अर्थ - जिस भारत देश में जडभरत जैसा महाज्ञानी महात्मा, श्रीशुकदेवजी जैसा ब्रह्मवेत्ता अवधूत ऋषि, वेदों, पुराणों तथा ब्रह्मसूत्रादि के लेखक युगद्रष्टा वेदव्यास जैसा महामनीषी एवम् विशिष्टाद्वैतवाद के प्रवर्तक जगद्गुरु आद्यरामानुजाचार्य जी जैसी विलक्षण विभूतियाँ अवतरित हुई हैं। वह निश्चित रूप से वन्दनीय हैं।

वाल्मीकितुलसीदासौ कश्यपात्री च सत्तमौ ।
यत्र भूतः स्वयं रामो धन्या सा भारती धरा ॥ १८ ॥

अर्थ - आदिकवि का गौरव प्राप्त करने वाले श्रीरामकथा के महान् उद्गाता महर्षि बाल्मीकिजी कलियुगीन तापों से त्राण दिलाने वाले युगपुरुष हुलसी हर्षवर्धन तुलसीदासजी ने जहाँ जन्म धारण किया है, इतना ही नहीं साक्षात् परब्रह्म राम ने जहाँ अवतार धारण किया, वह भारतभूमि धन्य है।

श्रीकृष्णो बलरामश्च वामनो यत्र जातकः ।
तद्भारतं विजानीयुस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १९ ॥

अर्थ - जिस पवित्र भूभाग में लीलाविहारी प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण, श्रीशेषावतारी बलरामजी, श्रीवामनदेव आदि का लोकमंगल हेतु अवतार हुआ है, उसे ही तीनों लोकों में प्रथित भारत के नाम से जाना जाता है।

तस्मिन् विन्ध्याटवीमध्ये सतना नाम मण्डलम् ।
चोरमारीति तत्रापि लब्धख्यातिश्च ग्रामकः ॥ २० ॥

अर्थ -उसी भारतदेश की उर्वराभूमि के विन्ध्याटवी की उपत्यका में मध्यप्रदेशान्तर्गत सतना नामक जनपद में चोरमारी नाम का एक प्रतिष्ठित ग्राम है।

यत्र ग्राम्या: सदा सभ्या भक्तिभावितमानसा: ।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरता नारायणपरायणा: ॥ २१ ॥

अर्थ - उस चोरमारी गांव में निवास करने वाले लोग सभ्य, भगवद्भक्ति से आप्लावित हृदय वाले, निरन्तर अपने दायित्वों का निष्ठापूर्ण निर्वहन करने वाले श्रीवैष्णव हैं।

तेषु जातो द्विजश्रेष्ठ: कश्चिद् गर्गकुलोद्भव: ।
गौरीशङ्करशुक्लस्तु विष्णुपूजनतत्पर: ॥ २२ ॥

अर्थ - उन्हीं कर्मयोगी श्रीवैष्णवों के मध्य भगवान श्रीकृष्ण के कुलपुरोहित का गौरव प्राप्त श्रीगर्गाचार्यजी के गोत्र में ग्रहीतजन्मा श्रीगौरीशंकरशुक्लजी हुए, जो सतत विष्णु आराधना में लीन रहते थे।

तस्य पुत्र: सदाचारी विशिष्टाद्वैतपोषक: ।
हीरालाल इति ख्यातो बभूव जनपूजित: ॥ २३ ॥

अर्थ - उन्हीं श्रीगौरीशंकरशुक्लजी के हीरालाल नामक एक भाग्यवान् पुत्र हुआ, जो अत्यन्त सदाचरण शील था, वह विशिष्टाद्वैत का अनुयायी एवं जनसामान्य द्वारा अत्यन्त आदृत था।

ततोऽभूत् कमला नाम योऽवधूतो विचक्षण: ।
जडभरतोऽपरो ज्ञेय: कर्णे कर्णेऽजपञ्जना: ॥ २४ ॥

अर्थ - उन परमभागवत हीरालालजी के कमलाप्रसाद शुक्ल नामक पुत्र का उद्भव हुआ। जो ईश्वर की भक्ति में अत्यन्त अनुरक्त रहता था, जिससे लोग उसे दूसरे जडभरत जी हैं, ऐसा आपस में कहा करते थे।

मातुर्लक्ष्म्याः प्रसादेन श्रीमन्नारायणी कृपा।
प्राभवत् तेन जातोऽसौ पुत्रश्रेष्ठः शशिप्रभः ।। २५ ।।

अर्थ - करुणामयी माँ लक्ष्मीजी एवं श्रीमन्नारायणजी की परमकृपा के फलस्वरूप चंद्र की भाँति सुन्दर एवं विमल हृदयवाला परमभागवत पुत्र कमलाप्रसाद के रूप में उन्हें प्राप्त हुआ।

तदानीं भारतेऽधर्मः कलिकालप्रचोदितः ।
धर्मस्य चतुरः पादान् हन्तुं पुनः समारभत् ।। २६ ।।

अर्थ - उस समय भारतीयधरा में कलिकाल द्वारा प्रेरित अधर्म का अभिवर्धन हो रहा था, उसने मानों धर्म के चारों पादों सत्य, दया, तप और दान को नष्ट करने की ही ठान ली थी।

सत्यं दया तपो दानं ज्ञेयं पादचतुष्टयम् ।
कलिकालानलैस्तप्तं भूतले क्रन्दनं बहु ।। २७ ।।

अर्थ - पुराणों के अनुसार सत्य, दया तप और दान को धर्म के चार स्तम्भों के रूप में स्वीकारा गया है । जब वे सभी कलिकाल की अग्निज्वाला से सन्तप्त होने लगे, तब पृथ्वी में अत्यंत आर्तक्रन्दन प्रारंभ हो गया।

क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
इति क्रन्दन् नरोमात्रं हा हेति समचीकरत् ।। २८ ।।

अर्थ - अधर्म की अभिवृद्धि होने से जन सामान्य में हाहाकार मच गया। सभी के मुख से मैं कहाँ जाऊँ ? मैं अब शान्ति से क़हां रहूँ ? कौन मेरी पीड़ा को नष्ट करे ? इत्यादि दीनवचन निकलने लगे।

अपारकरुणासिन्धुः श्रीमन्नारायणः प्रभुः।
ऐच्छज्जीवपरित्राणं कलिदावानलात्वरम्॥ २९॥

अर्थ - जनसामान्य धर्मानुरागियों की करुण पुकार को सुनकर अपारकरुणा के सागर श्रीमन्नारायण भगवान् ने कलिकाल की भीषण अग्निज्वाला से शीघ्र ही त्राण दिलाने हेतु मन में विचार किया।

आहूय कच्चिदवधूतं ज्ञानवैराग्यमूर्तिकम्।
श्रीशुकदेवनामानं भक्तिमूर्तिञ्च सत्तमम्॥ ३०॥

अर्थ - भगवान् नारायण ने अपने परम भागवतों में से एक अवधूत सन्त, जो ज्ञान वैराग्य एवं भक्ति की साक्षात् मूर्ति था, जिसे श्रीशुकदेव मुनि के नाम से जाना जाता है, उस श्रीमद्भागवत के परम उद्गाता मुनि को अपने निकट बुलाया।

गन्तव्या वसुधा शीघ्रं जीवकल्याणमिच्छता।
त्वया तत्र पुनः कार्यः सद्गतेर्मार्गविस्तरः॥ ३१॥

अर्थ - भगवान् नारायण ने श्रीशुकदेव को आज्ञा की, कि जीवमात्र का कल्याण करने के भाव लेकर तुम्हें पृथ्वीलोक में पुनः अवतीर्ण होना है तथा वहाँ सद्गति का सरल मार्ग, (भक्ति मार्ग) पुनः विस्तारित करना है ताकि जन-सामान्य अपने परम अभीष्ट को प्राप्त कर सके।

श्रुत्वा स्वीकृत्य चादेशं सोऽवधूतो नताञ्जलिः।
सद्गतेर्मार्गमन्विष्यन् विशिष्टाद्वैतमस्मरत्॥ ३२॥

अर्थ - प्रभु का उक्त आदेश शिरोधार्य करके उस अवधूत ने सद्गति का सरलतम सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद का स्मरण किया। क्योंकि यह ही जन सामान्य द्वारा पूर्वतः ज्ञात सिद्धांत है। जिसे भौतिक एवं सांसारिक पक्ष से आध्यात्मिक पक्ष में परिणत करने मात्र की आवश्यकता है।

विशिष्टाद्वैतवादो हि जीवकल्याणसाधकः ।
तेन रामानुजीयाज्ञा वर्धतामभिवर्धताम् ॥ ३३ ॥

अर्थ - व्यावहारिक दृष्टि में एक होकर भी दो का भाव एवं पारमार्थिक दृष्टि में दो होकर भी एक का भाव स्वामी सेवक आदि सम्बन्धों वाला विशिष्टाद्वैतवाद,जो आद्यरामानुजाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित है, वह जीवमात्र का परमकल्याणसाधक है अतः श्रीरामानुजाचार्य जी की यह सिद्धांतविस्तारगर्भा आज्ञा निरंतर अभिवृद्धि को प्राप्त हो।

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ।
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ ३४ ॥

अर्थ - सभी वेद नारायणपरक है, देवगण भी नारायण से ही उद्भूत हैं, सम्पूर्ण सृष्टि नारायणमयी है तथा यज्ञ आदि भी नारायणपरक ही हैं।

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ ३५ ॥

अर्थ - योगसाधना नारायणपरक है, तपस्या भी नारायणपरक है। ज्ञान नारायण मय ही है तथा जीवमात्र द्वारा परम प्राप्तव्य सद्गति (मोक्ष) भी नारायणपरक ही है।

अतो जन्म ग्रहीतव्यं मया विप्राऽमले कुले ।
यस्मिन् नारायणो नित्यं ध्येयो गेयश्च भक्तितः ॥ ३६ ॥

अर्थ - चूंकि यहां सब कुछ नारायणात्मक ही है अतः समष्टि कल्याण हित मुझे उसी पवित्र तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्म लेना चाहिये जहां भगवान् नारायण निरन्तर ध्येय एवं गेय हो।

वैदिकं धर्मविज्ञानमध्येतुं कमलाद्विजः।
चित्रकूटं समागत्य शास्त्राणि समधीतवान् ॥ ३७ ॥

अर्थ - इधर श्रीकमलाप्रसाद शुक्लजी वैदिकधर्म एवं विज्ञान का अध्ययन करने के लिये श्रीचित्रकूटधाम में राजगुरु आचार्य आश्रम आये तथा सभी अभीष्ट शास्त्रों का सम्यग् अध्ययन पूर्ण किया।

ततो विवाहसंस्कारं छोटीदेवीति कन्यया।
तिवारिवंशसम्भूत्याऽकारयत् कमलाद्विजः ॥ ३८ ॥

अर्थ - अध्ययन काल समाप्त होने पर वशिष्ठगोत्रीय तिवारी वंश में जन्मी छोटी बाई नामक सुलक्षणा कन्या के साथ श्रीकमलाप्रसादजी शुक्ल का विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

अथ सर्वगुणोपेते काले परमशोभने।
गर्भं दधार सा देवी लोकमङ्गलकारकम् ॥ ३९ ॥

अर्थ - इसके उपरांत अत्यंत शुभ घटी में जब ग्रहादिकों का संचार अनुकूल था तब अभीष्ट पुण्यकाल में लोक-मंगलकारक गर्भ को श्रीमती छोटीबाई ने धारण किया।

मध्यप्रदेशे विज्ञेयं कटनी नाम मण्डलम्।
कैलवारेति तत्रापि पुण्यभूमिः प्रकीर्तिता ॥ ४० ॥

अर्थ - भारत देश में मध्यप्रदेश के कटनी नाम जनपद में कैलवारा नामक एक अत्यन्त पुण्यस्थल है, क्योंकि वहां एक महान् आत्मा को जन्म प्रदान कराने वाली तथा उसकी बालकेलि से आमोदित होने वाली भूमि है।

जननीजन्मभूमित्वात् पूर्वतो या गरीयसी।
तामेव जन्मभूमिं स्वां कर्तुमैच्छन् महामुनिः ॥ ४१ ॥

अर्थ - जो धरती (कैलवारा) जननी की जन्मभूमि होने से पूर्वत: गौरवास्पद है, उसे ही अपनी भी जन्मभूमि होने का गौरव प्रदान करने का विचार इस महामुनि (शुकदेव) ने किया।

नवसिद्धिनवब्रह्मविक्रमाब्दगते शुभे।
हेमन्ते मार्गशीर्षे च पूर्णिमायाञ्च सत्तिथौ ॥ ४२ ॥

अर्थ - विक्रम संवत् 1989 में हेमन्त ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तिथि में -

पूर्वस्यामुदिते चन्द्रे नववादनके निशि।
कर्कलग्ने च सा साध्वी सुषुवे शिशुमद्भुतम् ॥ ४३ ॥

अर्थ - जब पूर्व दिशा में चन्द्र का बाल रूप देदीप्यमान हो रहा था, उसी पुण्यकाल में अर्थात् , रात्रि के प्रथम प्रहर 9.00 बजे कर्क लग्न में एक अद्भुत, चन्द्र की भाँति सुन्दर, स्निग्ध, संतापहारक बालक को छोटी बाई ने जन्म दिया।

जातकर्मादिकं कारयित्वा तदा,
श्रोत्रियैर्भाषितं बालकोऽयं महान्।
वैष्णवः प्राणिनामार्तहा सर्वदा,
राजराजेश्वरीयो गुरुर्जायताम्॥ ४४॥

अर्थ - वैदिक विद्वानों ने उस बालक की जातकर्म संस्कार की सम्पूर्ण विधियाँ सम्पन्न करायी तथा ज्योतिष के विद्वानों ने भविष्यवाणी की, कि यह बालक महान् आत्मा वाला, श्रीवैष्णवश्रेष्ठ, प्राणियों का दु:खहर्ता तथा राजगुरु होगा।

कोऽयं भो बालरूपो हरिरयमथवा शङ्करो बल्लभो वा।
व्यासो वारुन्धतीशो ननु धरणिधरो गौतमो वा शुको वा॥
किं वा रामानुजोऽयं धृतनवलतनुः श्रेयसे प्राणिभाजां।
दर्शं दर्शं सुदर्शं दिशि दिशि सुजना भाषमाणा बभूवु : ॥ ४५ ॥

अर्थ - उस नन्हे से शिशु को देखने के लिए आये हुए लोगों ने बालक की अद्भुत छटा एवं सौंदर्य को देखकर विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियाँ की। कोई कहता है कि, यह बालरुप में कौन है ? क्या साक्षात् विष्णु तो अवतरित नहीं हो गये ! अथवा साक्षात् शंकराचार्य, बल्लभाचार्य, वेदव्यास, वशिष्ठ, संकर्षणजी, श्री शुकदेवजी अथवा प्राणिमात्रका कल्याण करने की भावना से स्वयं आद्य रामानुजाचार्य भगवान् ही तो इस सुन्दर शरीर को धारण करके अवतरित तो नही हो गये हैं ? इस प्रकार, उस अद्भुत शिशु को देख-देखकर सुजन लोग आपस में चर्चायें करते देखे गये।

मन्ये नारायणादेशं कर्तुं हर्तुञ्च प्राणिनः।
कलिदावानलीं पीडां शुक एषः समागतः ॥ ४६ ॥

अर्थ - भगवान श्रीमन्नारायण का आदेशानुपालन करने के लिए तथा प्राणिमात्र की कलिकालप्रेरित दावानल की भीषणज्वालाजनित पीड़ा को समाप्त करने के लिये श्रीशुकदेवजी महाराज ही इस बालक के रुप में अवरित हुए हैं। ऐसा मैं मानता हूं।

पित्रा बाल्ये कृतं नाम श्रीसरयूप्रसादकः।
समापन्ने च कैशोरे स्वामिसङ्कर्षणो मुनिः ॥ ४७ ॥

अर्थ - उस बालक का नामकरण माता-पिता द्वारा सरयू प्रसाद किया गया जिससे जीवन की प्रथम अवस्था में उपरोक्त नाम से व्यवहृत हुआ। अनन्तर किशोरावस्था में ही विरक्ति दीक्षा ग्रहण कर लेने के कारण राजगुरु स्वामीसंकर्षणप्रपन्नाचार्यजी महाराज के नाम से लोकवन्दित हुआ।

बाल्येऽपि सः क्रीडनकं विधाय,
नारायणं केवलमात्मबन्धुम् ।
प्रीत्यार्चनं वन्दनदास्यभावे
समर्पयन् बाल्यमतीतवांश्च ॥ ४८ ॥

अर्थ - इस बालक (राजगुरु स्वामीसंकर्षणप्रपन्नाचार्यजी) ने भगवान् नारायण की मूर्ति को ही खिलौना मानकर उसके साथ खेलते हुए तथा उस मूर्ति का ही अत्यन्त प्रेमभाव से पूजन अर्चन आदि करते समय दास्यभाव का निवेदन करते हुए तथा नारायण ही मेरे सच्चे बन्धु है, ऐसा मानते हुए बाल्यावस्था को व्यतीत किया।

कन्दावदाते जनपारिजाते,
नारायणे चार्पितचित्तवृत्तिम्।
विलोक्य साध्वी पतिदैवतं तत्,
सुतस्य शिक्षार्थमचिन्तयत् सा ॥ ४९ ॥

अर्थ - उस परमसाध्वी छोटीबाई ने मेघ की भाँति सुन्दर, जनसामान्य की इच्छाओं को पूर्ण करने में कल्पवृक्ष की भाँति भगवान् नारायण में अपने पति की चितवृत्ति को समर्पित देखकर अर्थात् पारिवारिक दायित्वों की ओर पति का ध्यान न होने से स्वयं ही अपने पुत्र की शिक्षा हेतु चिन्तन किया तथा अपने भाई से इस सम्बन्ध में चर्चा की।

मातुलो माधवो नाम त्रिपाठिकुलसम्भवः ।
वाशिष्ठो योगवाशिष्ठं चानयच्छिक्षितुं गृहम् ॥ ५० ॥

अर्थ - बालक सरयूप्रसाद के मामाजी जो वशिष्ठगोत्रीय तिवारी थे, उन्होंने योग में जो वशिष्ठ की भाँति अनुपमेय है, उसको वेदादि शास्त्रों के अध्ययन की ओर उन्मुखता एवं सामर्थ्य सिद्धि हेतु प्राथमिक शिक्षा दिलाने के लिए अपने गृह ले आये।

पञ्चवर्षाणि चाधीत्य शिक्षां प्राथमिकीं मुनिः ।
वेदवेदान्तशिक्षार्थं चित्रकूटं किलागतः ।। ५१ ।।

अर्थ - यह तेजस्वी बालक पाँच वर्षों में अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करके वेद, वेदान्त, शास्त्र, पुराणादि की शिक्षा ग्रहण के लिए श्री राजगुरु आचार्य आश्रम नयागाँव चित्रकूटधाम आया।

गोविन्दाचार्यचरणा बलरामप्रपन्नकम् ।
सरयूप्रसादशिक्षाया आदिषन् मुनिभूषणम् ।। ५२ ।।

अर्थ - तत्कालीन समय में अनन्त समलंकृत परम वैष्णव राजगुरु श्रीगोविन्दाचार्यजी महाराज राजगुरुपद पर विराज रहे थे, उन्होंने अपने उत्तराधिकारी युवराजस्वामी बलरामदेशिकाचार्य को विलक्षण प्रतिभावान् सरयूप्रसाद की उचित शिक्षा व्यवस्था करने का आदेश किया।

भक्तिवैराग्यचिन्मूर्तिरेष बालो विचक्षणः ।
कर्तुं नारायणादेशं मम शिष्यत्वमर्हति ।। ५३ ।।

अर्थ - राजगुरु (युवराज) स्वामीबलरामप्रपन्नाचार्यजी ने बालरुप में विभाषित अलौकिक व्यक्तित्व को पहचान लिया तथा ये भक्ति वैराग्य एवं ज्ञान की समवेत मूर्ति स्वयं शुकदेव ही नारायणदेश अनुपालनार्थ यहां आये हैं, ऐसा मानकर उन्हें अपनी परम्परानुमोदित प्रपत्ति का अधिकारी माना।

बलरामप्रपन्नोऽपि स्वामिसङ्कर्षणस्य ह ।
सत्वरं कारयामास साहाय्यमनुकूलितम् ।। ५४ ।।

अर्थ - यह बालक राजगुरु परम्परा का आचार्य बनकर अपेक्षानुरुप लोकमंगल करेगा, ऐसा सोचकर स्वामी बलरामदेशिकाचार्य जी ने बालक की उत्तमशिक्षा हेतु सभी आवश्यक प्रबन्ध करवाये।

उपवीतं सुसम्पाद्य नारायणगतिं तथा।
वेदारम्भं ततः कृत्वा शास्त्राध्याये नियोजितः ॥ ५५ ॥

अर्थ - सर्वप्रथम बालक का यज्ञोपवीत संस्कार एवं वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न करवाकर श्रीमन्नारायण की शरणागति का मूल मन्त्र (अष्टाक्षर मन्त्र **ॐ नमो नारायणाय**) प्रदान किया तथा शास्त्रों के गहन अध्ययन में नियोजित कर दिया।

सङ्कर्षणन्तु कष्टानां प्राणिनामचिरादयम्।
करिष्यतीति विज्ञाय नाम सङ्कर्षणं कृतम् ॥ ५६ ॥

अर्थ - यह तेजस्वी बालक अपनी तपस्या, ज्ञान, वैराग्य आदि विशिष्ट गुणों से प्राणिमात्र की पीड़ाओं का संकर्षण करके उन्हें सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाला होगा, यह जानकर ही स्वामी बलरामदेशिकजी ने आपका नाम संकर्षण प्रपन्नाचार्य रखा।

अथ चित्तं समाधातुं धर्मतत्वञ्च वेदितुम्।
पूर्वाचार्यचरणानां वन्दनं कर्तुमारभत् ॥ ५७ ॥

अर्थ - इसके अनन्तर नारायण चिन्तन में अपनी चंचल चित्तवृत्ति को समाधिस्थ करने के लिए तथा धर्मतत्व को समझने के लिए पूर्वाचार्यों का स्तवन मधुर वाणी से करना प्रारंभ किया।

श्रीनारायणभक्तिभावितहृदं श्रीस्वामिनं सद्गुरुं,
भक्त्या राजगुरुं तथैव जगतां मोहादिदोषापहम्।
आचार्याश्रमचित्रकूटधरणीं संदीपयन्तं मुनिं,
नौमि श्रीबलरामदेशिकमहं श्रीवैष्णवाब्धेर्विधुम् ॥ ५८ ॥

अर्थ - मैं (स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य)अपने गुरुदेव श्री बलरामदेशिकाचार्यजी महाराज के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ, जो श्रीमन्नारायण की भक्ति से भावित हृदय वाले हैं, जो राजगुरु पद पर

अभिषिक्त हैं, सांसारिक जनों के मोह, काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों को नष्ट करने वाले हैं, जो आचार्य आश्रम चित्रकूटधाम में श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की उत्तराहोविलपरम्परारुपसमुद्र में नवोदित चन्द्र की भांति अत्यन्त आनन्ददायक रत्न है।

सारल्यं परिलक्ष्यते हि नितरां शीलेषु यस्याऽनिशं,
माधुर्यं समलङ्करोति सततं वाणी च यस्याऽनघा।
तारुण्यं भजते तपोऽनवरतं चर्यागतं यस्य च,
तं गोविन्दपदारविन्दममलं भक्त्या नमस्कुर्महे॥ ५९॥

अर्थ - मैं (स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य) अपने दादागुरु पूज्यचरणकमल राजगुरु स्वामी गोविन्दाचार्यजी महाराज के चरणों में अत्यन्त भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ, जिनमें निरन्तर ही सरलता का शुद्धतम पक्ष दृष्टिगोचर होता है। जिनकी दोषरहितवाणी निरन्तर ही माधुर्यरस से आप्लावित रहती है तथा शरीर के वृद्ध होने पर भी जिनकी दिनचर्या में तपस्या का तारुण्य दिखलाई पड़ता है।

मध्यमाश्रेणिपर्यन्तं श्रीरामाधारशुक्लतः।
अधीत्य सकलं शास्त्रं शास्त्रिणं प्रविवेश ह॥ ६०॥

अर्थ - परमाचार्यों के आज्ञानुपालन में इस महामनस्वी बालक ने मध्यमापर्यन्त (कक्षा 12 वीं) श्री रामाधारशुक्ल नामक पण्डित जी से सभी शास्त्रों का अध्ययन किया तथा उत्तरमध्यमापर्यन्त की समस्त परीक्षायें उत्तम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

शास्त्रिणं पाठयामासू रामेश्वरदयालवः।
त्रिपाठिकुलसम्भूता नानाशास्त्रविचक्षणाः॥ ६१॥

अर्थ - तत्कालीन समय के प्रख्यात आचार्य त्रिपाठिकुलभूषण आचार्य रामेश्वर दयाल जी, जो वेद, वेदान्तादि विविध शास्त्रों के पारदृश्वा विद्वान् थे उन्होने इस तेजस्वी बालक को शास्त्री पढ़ाया।

शिवदर्शनपादाब्जस्त्रिपाठिकुलभूषणः ।
व्याकरणञ्च वेदान्तं शिक्षयामास वैष्णवम् ॥ ६२ ॥

अर्थ - विद्या की राजधानी वाराणसी (उ.प्र.) के प्रख्यात व्याकरणवेदान्तादि शास्त्रों के मर्मज्ञ आचार्य शाण्डिल्यगोत्रीय आचार्य शिवदर्शन त्रिपाठी जी ने इस अद्भुत बालक को व्याकरण एवम् वेदान्त की शिक्षा प्रदान की।

अधीत्य सकलान् वेदान् वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
काश्यां सङ्कर्षणाचार्यश्चित्रकूटं समागतः ॥ ६३ ॥

अर्थ - लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों से सम्पूर्ण वेदों, वेदांगों षड्शास्त्रों एवं अष्टादश पुराणादि का अध्ययन सम्पन्न करके तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.) से आचार्य की पदवी प्राप्त कर, यह अद्भुत मेधा का धनी बालक श्री चित्रकूटधाम आ गया।

तत्र प्रादुरभूत् कालः सर्वलोकशुभावहः ।
विरक्तिदीक्षणं प्राप्तुं निश्चिक्ये मुनिभूषणः ॥ ६४ ॥

अर्थ - बाल्यकाल से ही लोकेषणा से विरक्ति भाव धारण करने वाले इस महापुरुष ने विरक्ति दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया। अतः वह परम मंगलमय क्षण, जो सभी को सुख प्रदान करने वाला था उपस्थित हुआ। क्योंकि सन्त का जीवन परोपकार एवं लोक मंगलार्थ ही होता है क्यों कि वह ''सीयराम मय सब जग जानी'' की भावना के अनुरुप जन सेवा में तत्पर रहता है।

तत्र सप्तोत्तरे विंशके विक्रमे,
वै शुचौ शुक्लपक्षस्य चैकादशे।
प्राप्य नारायणीं सद्गतिं भूतवान्,
श्रीगुरोः पादकैङ्कर्यसेवाव्रती ॥ ६५ ॥

अर्थ - विक्रम संवत् २००७ आषाढ़ शुक्ल पक्ष एकादशी तिथि में श्रीगुरु चरणानुरागी तथा गुरुपरम्परा के आदर्शों एवं महती परम्पराओं का अनुपालन करने वाले इस तपस्वी बालक ने जनमात्र के शरण्य भगवान नारायण की शरणागति प्राप्त की तथा मनसा, वाचा एवं कर्मणा गुरु उपासना में तल्लीन हो गया।

विश्वं विष्णुसमुद्भूतं सर्वं विष्णुमयं जगत्।
वसुधैव कुटुम्बं मे ज्ञातवान् गुरु सेवया ॥ ६६ ॥

अर्थ - श्री सद्गुरुचरणों की एकनिष्ठ सेवा के फलस्वरूप स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी को यह अनुभूति हुई कि यह सम्पूर्ण विश्व मेरा अपना ही परिवार है, यहां कोई पराया नही है, अतः नारायणसंभूत सम्पूर्ण विश्व ही विष्णुमय है। जिससे सभी की निःस्वार्थ एवं प्रेमभाव से सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

गुरोः कृपातः सम्प्राप्य मायामोहनिरासकम्।
ज्ञानालोकं मुनिश्चायं स्वस्वरूपमचिन्तयत् ॥ ६७ ॥

अर्थ - श्री सद्गुरुकृपा से मायामोह का समूल विनाश कर देने वाले ज्ञान के आलोक को इस महामुनि ने प्राप्त किया तथा स्व. अर्थात् आत्मीय (परमात्मा) एवं स्व. अर्थात् (स्वयं का) चिन्तन किया।

अहं नैव देवो न पूजाभिलाषी,
न नाथः प्रभुर्नो विभुर्नो कदाचित्।
अहं वैष्णवीं सद्गतिं प्राप्तुकामः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ६८ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी परमात्मन्! मैं न तो देव हूँ, न ही पूजा कराने का अभिलाषी, मैं न तो किसी का स्वामी हूं न ही प्रभु या विभू हूँ। मैं तो आपके श्रीचरणों की प्रेमरुपा भक्ति प्राप्त करने का इच्छुक आपके चरणकमलों के दासों का एक छोटा सा दास हूं।

अहं नैव बालो न चाहं किशोर-
स्तथा नो युवा नो जराजीर्णदेहः ।
विमुक्तो महाधर्मतो भक्तिपुष्टः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ६९ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! न तो मैं बालक हूं न ही किशोर अथवा युवा हूं। मैं वृद्ध भी नही हूं। क्योंकि ये सभी शरीर के धर्म विशेष हैं। मैं तो भक्ति रस का पान करके पुष्ट हुआ सांसारिक प्रपच्चो से मुक्त आपके श्री चरणों के दासों का दास हूं।

अहं नैव विप्रो न च क्षत्रियोऽहं,
न वैश्यो न शूद्रो न वै चान्त्यजोऽस्मि ।
अहं वैष्णवस्त्वत् पदाम्भोजभृङ्गः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७० ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र इन चतुर्वर्णों में से कोई भी नही हूँ तथा मैं चाण्डाल श्वपचादि भी नहीं हूँ क्योंकि ये सभी सांसारिक धर्म है जिनसे परम मुक्त हुआ मैं आपके श्री चरणकमलों का एक छोटा सा भ्रमर तथा आपका दासानुदास हूं।

न माता पिता मे न बन्धुर्न मित्रं,
न मे क्वापि रङ्गो न सङ्गो न भङ्गः ।
अहं त्यक्तसंसारकौटुम्बबन्धः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७१ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! इस संसार में आपके अतिरिक्त न तो मेरी कोई माता है, न ही पिता। बन्धु, मित्र संगी तथा शत्रु भी नही हैं। मैं इन सांसारिक सम्बन्धों से मुक्त हुआ आपके श्रीचरणों के दासों का दास हूँ।

मदीयास्ति माता गुरुश्चापि लक्ष्मीः,
पिता विष्णुदेवः सहायो गरुत्मान्।
उपास्योस्ति लक्ष्मीपतिर्वेदवेद्यः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७२ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! श्री लक्ष्मी माँ ही मेरी माँ हैं तथा वही गुरु भी हैं। भगवान नारायण ही मेरे पिता तथा गरूड़ ही मेरे सहायक हैं। मेरा उपास्य संसार नही अपितु आप वेदवैद्य श्री लक्ष्मीपति विष्णु हैं। क्योंकि मैं आपके चरणों के दासों के दासों का दास हूँ।

न चैवास्मि योगी न भोगी रसानां,
न मानी विमानी न वा भूरिदानी।
अहं कैटभारेश्चरित्राभिमानी,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७३ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! मैं न तो कोई योगी हूँ और न ही सांसारिक विषय रसों का भोग करने वाला भोगी, मैं मानी, विमानी अथवा भूरि दान की गई वस्तु का आदाता भी नही हूँ। मैं तो कैटभादि राक्षसों के विनाशक आप भगवान् नारायण के चरणों के दासों का दास हूँ।

शरीरं हृषीकाणि नाहं कदापि,
मनो नैव चाहं न बुद्धिर्न चित्तम् ।
निरस्ताखिलत्याज्यदेहप्रपञ्चः,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७४ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! न तो मैं शरीर हूँ न ही इन्द्रियाँ, मैं मन, बुद्धि अथवा चित्त भी नही हूँ। मैं तो सम्पूर्ण देह प्रपञ्चों से परे एकमात्र आपके श्रीचरणों का दासानुदास हूँ।

न मे क्वापि मोहो न मे क्वापि रोषो,
विरागः कुतश्चिन्न रागो मदीयः।
अहं नित्यवैकुण्ठलोकानुरागी,
सदा विष्णुपादाब्जदासानुदासः ॥ ७५ ॥

अर्थ - हे मेरे स्वामी ! मेरा अब सांसारिक पदार्थों के प्रति न तो कोई मोह है न ही कहीं रोष है। मैं तो राग एवं विराग से परे श्री वैकुण्ठधाम के प्रति अनुराग रखने वाला एकमात्र आपके चरणों के दासों का दास हूँ।

ततोऽज्ञाननिशामध्ये शयानं बालिशं नरम्।
जागर्तिं कर्तुमारब्धं कृत्वा नारायणध्वनिम् ॥ ७६ ॥

अर्थ - इस प्रकार स्वरुप का चिन्तन करने के उपरांत इस महामनस्वी ने प्राणिमात्र पर करुणा करते हुए अज्ञान की अँधियारी रात्रि में सोये हुए विवेकहीन मानव को श्रीमन्नारायण के गुणानुवादों के गान से जगाना प्रारंभ किया।

तथा तीर्थाटनं चक्रे नारायणमनुस्मरन्।
कलिपीडाविनाशाय प्रार्थितो हरिरव्ययः ॥ ७७ ॥

अर्थ - तथा जनसामान्य को घूम-घूमकर जगाने का संकल्प लेकर इस महापुरुष ने भगवान नारायण का चिन्तन करते हुए तीर्थाटन करना प्रारंभ किया एवं कलिकाल के दुष्प्रभाव से पीड़ित मानव मात्र की पीड़ा निरास हेतु भगवान् हरि की प्रार्थना की।

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं बदरीधाम पावनम्।
नरं नारायणञ्चैव गङ्गोत्रीधाम चाद्भुतम् ॥ ७८ ॥

अर्थ - तीर्थ क्षेत्रों का परिभ्रमण करते हुए स्वामी संकर्षण प्रपन्नाचार्य ने हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्री बदरीविशालधाम, नर नारायण तथा गंगा का अदभुत उद्गम क्षेत्र गंगोत्री धाम की यात्रा की।

तीर्थराजप्रयागञ्च मथुराधाम गोकुलम्।
वृन्दावनञ्च साकेतं नैमिषारण्यमेव वा॥ ७९॥

अर्थ - तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी का दर्शन एवं मज्जन कर लीलाविहारी श्री कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा तथा उनकी लीलाभूमि गोकुल एवं वृन्दावन का परिभ्रमण किया। अनन्तर श्री लोचनाभिराम श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्याधाम तथा ऋषियों की साधना स्थली नैमिषारण्य की भी यात्रा की।

काशीमवन्तिकां पुण्यां पुरीं द्वारावतीं तथा।
गामं गामं मुनिश्चक्रे रामानुजप्रसादनम्॥ ८०॥

अर्थ - लोकमंगलार्थ विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार करते हुए स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी ने प्राच्य विद्याओं के विश्वप्रसिद्ध केन्द्र काशी एवं अवन्तिका (उज्जयिनी) तथा श्रीजगन्नाथपुरी, श्रीद्वारिकापुरी आदि सुप्रसिद्ध तीर्थस्थलों में जा-जाकर जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानुजार्य जी के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाकर उन्हें प्रसन्न किया।

भ्रामं भ्रामं सुदूरस्थं देशं देशं महामुनिः।
न तथा शान्तिमापन्नः दर्शं दर्शं जनव्यथाम्॥ ८१॥

अर्थ - इस प्रकार देश के सुदूरस्थ क्षेत्रों (तीर्थस्थलों) का भ्रमण करने के उपरान्त भी आपको शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। क्योंकि जन सामान्य कलिकाल प्रभाव जनित धर्मह्रास एवं अधर्माभिवृद्धि से आकुल था।

संस्कृतं संस्कृतिं धर्मं पीडितं समुपेक्षितम्।
लोकं लोकं समालोक्य तथा शिक्षाविवर्धनम्॥ ८२॥

अर्थ - इस महापुरुष ने जन सामान्य में भारतीय संस्कृति की मूलाधार

संस्कृत भाषा की व्यावहारिक भाषा के रूप में उपेक्षा, राष्ट्रीयता की प्राणतत्व भारतीय संस्कृति की जनाचार में न्यूनता एवं मानवता के प्राणभूत सनातन धर्म की उपेक्षादि दोषों को तथा कभी विश्वमात्र का जगद्गुरु कहलाने वाले भारत में संस्कार मूलक शिक्षा का ह्रास देखकर दुःखी हुए।

लोकदुःखेन संतप्तो लोकदुःखविमोक्षणम्।
कर्तुकामः समाधिष्ठो मुनिरेवं व्यचारयत् ॥ ८३ ॥

अर्थ - जनसामान्य के दुःखों से द्रवीभूत होकर, प्राणिमात्र को दुःखों से निवृत्ति दिलाने की इच्छा से इस महापुरुष ने एकान्त में समाधिस्थ होकर इस प्रकार चिन्तन करना प्रारम्भ किया।

हा कष्टं मम भारते पुनरहो जातं कथं द्रोहिणां,
हिंसापूरितताण्डवं प्रतिजनं चारित्र्यपातो महान्।
राष्ट्रे राष्ट्रियभावनाऽपि कृशतां याता तथा संस्कृतिः
प्राप्ता वारिगतिं विचिन्त्य मुनिना नारायणः प्रार्थितः ॥ ८४ ॥

अर्थ - हाय ! कष्ट है। मेरे इस महान् देश में मानवता के द्रोही नरपिशाच राष्ट्र द्रोहियों के द्वारा पुनः हिंसात्मक नग्नताण्डव (आतंकवाद) प्रारम्भ हो गया है। लोगों में चारित्रिक पतन विशेष रूप से देखा जा रहा है। इस राष्ट्र में सत्ता लोलुप एवं भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए राजनेताओं के कारण राष्ट्रीयभावना अत्यन्त कृशता को प्राप्त कर गयी है। जिस महान संस्कृति के हम उपासक थे, वही संस्कृति ग्राहकाभाव से वारिगति को प्राप्त हो रही है ऐसी विपरीत एवं चिन्तनीय परिस्थिति में तो अब अपारकरुणावरुणालय भगवान् नारायण ही प्रार्थनीय है, ऐसा विचार कर इस महापुरुष ने प्रभु के चरणों में अपनी अन्तर्भावना के सप्त पुष्प समर्पित किये।

ज्ञानविज्ञानवैराग्यसंभूषितो,
भक्तिपूतो जनो भारते वर्धताम्।
मामकीने प्रजातान्त्रिके भारते,
सन्ततं रामराज्यं प्रभो राजताम्॥८५॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! मेरे भारत देश में महान ज्ञानी, महान वैज्ञानिक, त्यागी, तपस्वी परोपकारी एवं भक्त अर्थात् निरपेक्ष एवं निःस्वार्थ भाव से पीड़ितों उपेक्षितों एवं निःसहायों की सेवा करने वाले महान सपूत ही जन्म धारण करें। मेरे इस विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश में सर्वदा राम राज्य की परिकल्पना, संकल्पना एवं स्थापना हो।

सर्वभूतो लभेतात्र सन्मङ्गलं,
शोभनं शासनं चाशनं वासनम्।
नापि कोऽपि व्रजेद् दूषणं शोषणं,
भूतले भारतं भारतं शोभताम्॥ ८६ ॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! मेरे इस महान देश में बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक प्राणी मंगलमय भविष्य प्राप्त करे। उन्हें सुशासन, इच्छानुरुप भोजन, मनोनुकूल वस्त्र एवं निवास प्राप्त हो। कोई भी व्यक्ति न तो किसी भी प्रकार के पतन को प्राप्त हो तथा न ही शोषण को प्राप्त करे। मैं चाहता हूं कि मेरा यह महान देश इस पृथ्वी लोक में निरन्तर प्रकाश की ओर ही उन्मुख रहता हुआ संसार को ज्ञान का प्रकाश दे तथा अपने भारत नाम को सार्थक करता हुआ अखण्ड रुप से सर्वदा सुशोभित हो।

पश्चिमीसभ्यताडाकिनीनग्नता-
पूरितं ताण्डवं भारते नश्यतात्।
विश्वबन्धुत्वभावैकसंपोषिका,
संस्कृतिर्भारतीयैव नन्नन्द्यताम्॥ ८७॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! पाश्चात्यसभ्यतारुपिणी डाकिनी का नग्न नृत्य इस भारत में शीघ्र ही समाप्त हो जाये, क्योंकि यह राष्ट्रीय, सामाजिक एवं पारिवारिक

विखण्डन की पोषिका है। मेरे इस महान् देश में केवल भारतीय सनातन संस्कृति ही निरन्तर समृद्धि एवं नवनवोन्मेष को प्राप्त हो, जो विश्वबन्धुत्व का, आपसी भाईचारे का तथा परस्पर पूरकता का पोषण करती है।

राष्ट्रदेवो भवन् मातृदेवो भवन्,
सन्ततं संस्कृतं भाषणं चाचरन्।
पितृदेवो भवन्नातिथेयो भवन्,
लोकसेवाव्रती भारते वर्धताम्॥ ८८॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! मेरे भारत देश में निवास करने वाला प्रत्येक भारतीय व्यक्ति राष्ट्र को देवता मानकर उसकी पूजा करे। व्यक्तिगत हितों से बढ़कर राष्ट्रहित को माने। इस भारतभूमि को माँ का सम्मान प्रदान करे। वह अपने माता-पिता को देवता मानकर उसकी सेवा करे। गृह में आगत अतिथि का देवबुद्धि से स्वागत एवं सम्मान करे। इस प्रकार जन सामान्य के प्रति भी देवबुद्धि रखकर परोपकार एवं सेवा करने वाले व्यक्तियों की इस देश में अभिवृद्धि हो।

घोरमातङ्कवादं सदा खण्डयन्,
भ्रातृभावं समारोपयन् पालयन्।
मानवीमूल्यसंवर्धिनीं संस्कृतिं,
शिक्षयन् भारतीयः सदा राजताम्॥ ८९॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! मेरे भारत देश में जन्मधारण करने वाला भारतीय सपूत, मानवता के महाशत्रु घोर आतंकवाद का सर्वदा खण्डन अर्थात् नाश करने वाला हो। वह विश्वबन्धुत्व का जन-जन में समारोपण तथा संवर्धन करने वाला हो एवं मानवीय मूल्यों की संवर्धिका भारतीय सनातन संस्कृति की शिक्षा विश्वमात्र को प्रदान करते हुए सदा सर्वदा देदीप्यमान होता रहे।

भारतीयः पुनर्भारते भारतो,
लोकसेवाव्रती ज्योतिषः पूजकः।
नित्यमग्रेसरोऽध्यात्मविद्याव्रती,
विश्वबन्धुत्वभावं सदा रक्षतात् ॥ ९० ॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! भारत देश में जन्म धारण करने वाला प्रत्येक भारतीय पुनः प्रकाशोन्मुख गतिशील हो। वह जन सामान्य की अपेक्षानुरुप सेवा करने वाला एवं ज्ञान ज्योति का उपासक हो। वह सर्वदा ही अध्यात्म विद्या में पारंगत होकर विश्व मात्र का अग्रेसर महान व्यक्ति बने तथा विश्व बन्धुत्व की महान शिक्षा देने के साथ-साथ उसे स्वयं भी आचरित करे।

भारतं भारतं भारता संस्कृति-
र्भारतं लोकमात्रं वचः संस्कृतम्।
शाश्वतं भासतां विश्वमात्रम्पुन-
श्चैकनीडे मुदा राजतां राजताम् ॥ ९१ ॥

अर्थ - हे मेरे प्रभु ! मैं चाहता हूं कि मेरा भारत देश भा में रत हो अर्थात् प्रकाश का उपासक हो, यहाँ की सनातन भारतीय संस्कृति भी भा में रत हो। आम जन की व्यावहारिक भाषा (लोकभाषा) संस्कृत भाषा हो तथा अनन्तकाल तक यह सम्पूर्ण विश्व एक ही घोसले में निवास करने वाले पक्षियों की भांति एक ही परिवार के सदस्य के रुप में परस्पर पूरक बनकर निवास करते हुए सुशोभित हो।

ततो मन्दाकिनीतीरे सद्गुरोर्धाम मङ्गलम्।
आचार्यमन्दिरं प्राप्तं योगिना मृदुभाषिणा ॥ ९२ ॥

अर्थ - अनन्तर मधुर भाषण करने वाले महायोगी स्वामी संकर्षणाचार्यजी अपने सद्गुरु की मंगलमय साधनास्थली मंदाकिनी तट पर अवस्थित आचार्य मंदिर नामक प्रसिद्ध आश्रम में आ गये।

मन्दाकिनी वहति यत्र पवित्रतोया,
माङ्गल्यकामदगिरिस्तनुते समक्षम्।
जागर्ति यत्र नितरां महिताञ्जनेय,
आचार्यमन्दिरमिदं जयतान्नितान्तम्॥ ९३॥

अर्थ - जहां पर कल-कल निनाद करती हुई स्वच्छ सलिला मन्दाकिनी बह रही है, जहां पर श्रीकामदगिरि मंगल का विस्तार कर रहे हैं तथा जहां स्वयं रामदूत हनुमान अहर्निश जागृत रहकर श्रीरामकुमार भगवान् की परिचर्या में संलग्न है वह आचार्य मन्दिर नितान्त रूप से जय अर्थात् नव नवोत्कर्ष को धारण कर रहा है।

अवधूतं शुकं साक्षात् स्वामिसङ्कर्षणं मुनिम्।
स्वागच्छन् संस्कृता वाचा आश्रमस्थास्तपस्विनः॥ ९४॥

अर्थ - साक्षात् अवधूत शुकाचार्यजी ही स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी के रूप में आये हुए है, ऐसा विचार कर आश्रमस्थ तपस्वियों, साधकों एवं ब्रह्मचारियों ने संस्कृतभाषा में अपने सुसंस्कृत भावों को अभिव्यञ्जित कर स्वागत किया।

हे तपस्विन् शुभं स्वागतं ते,
मङ्गलाशंसनं भावितं ते।
शाश्वतं मङ्गलं वाचनं ते,
स्वागतं स्वागतं स्वागतं ते॥ ९५॥

अर्थ -हे तपस्विन् ! आपका शुभ स्वागत है हमारा श्रद्धाभावित मंगलानुशासन आपको समर्पित है। आपके लिए हम निरन्तर मंगलमय स्वस्तिवाचन करते हैं हे महामुनि आपका स्वागत है, स्वागत है, स्वागत है।

हे मनस्विन्! तपःपूतजीवन!
हे यशस्विन्! यशोराशिचिद्घन।
श्रद्धया पावितं स्वागतं ते,
सादरं कुर्महे स्वागतं ते॥ ९६॥

अर्थ- हे मनस्विन्! हे तपस्या से जीवन को पवित्र कर लेने वाले महातपोधन ! हे यशस्विन् हे यशोराशि चिद्धन ! श्रद्धा से पवित्रीकृत स्वागत आपको समर्पित है। हे महापुरुष ! हम आपका अत्यन्त आदर से स्वागत करते हैं।

देववाणीसुसाहित्यधीमन् !
राघवादर्शलालित्ययौवन।
अर्चनं वन्दनं शोभनं ते,
भावपूतं वचो ब्रूमहे ते॥ ९७॥

अर्थ - हे संस्कृतवाङ्मय के पारदृश्वा धीमन्! भगवान् रामकुमार की लीला-कथा के उद्गान एवं दर्शन से युवावस्था को सफल बनाने वाले महामुनीश्वर ! आपका अर्चन है, वन्दन है। हम शुभ मंगलमय भावपूतवाणी आपके स्वागत में बोल रहे हैं।

संस्कृतोत्पलसुकाननविकासिन् !
संस्कृतेश्शाश्वतं चारूहासिन्।
प्रेमपीयूषजुष्टाञ्जलिस्ते,
दीयते भावितं स्वागतं ते॥ ९८॥

अर्थ - हे संस्कृतरूपी कमल वन को विकसित करने वाले भास्कर! हे भारतीय सनातन संस्कृति के शाश्वत मधुर ह्लास ! हम सभी श्रद्धा से भावित प्रेम रुप अमृत से परिपूर्ण शुभाञ्जलि आपको समर्पित कर रहे हैं। हे महापुरुष ! आपका स्वागत है।

राष्ट्रभाषा भवेत् संस्कृतं मे
संस्कृतिर्विश्ववन्द्या पुनर्मे।
सन्ततं चिन्तनं तादृशे ते
ब्रूमहे स्वस्तिवाचं नमस्ते॥९९॥

अर्थ - भारतीय संस्कृति की मूलाधार संस्कृत भाषा राष्ट्रभाषा बने। भारतीय सनातन संस्कृति ही विश्व मात्र की एकमात्र संस्कृति हो, ताकि व्यक्ति, व्यक्ति का पूरक एवं पोषक बने। ऐसा महान् चिन्तन सर्वदा ही जिनका रहता है, उन महापुरुष के लिए हम सभी स्वस्तिवाचन समर्पित करते हैं। हे महापुरुष आपको हमारा प्रणाम है।

सम्पूर्ण लोकदायित्वं लोकमङ्गलहेतवे।
बलरामप्रपन्नार्यो ददौ सङ्कर्षणाय नु ॥ १०० ॥

अर्थ - अनन्तर राजगुरु स्वामीबलरामदेशिकाचार्य जी ने लोकमंगल हेतु परम्परानु प्राप्त सम्पूर्ण लोकदायित्व स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी को सौंप दिया।

इदानीं न्यासमुक्तोऽहं करिष्ये चात्मचिन्तनम्।
साम्प्रतन्तु त्वया कार्यमाश्रमोचितमङ्गलम् ॥१०१॥

अर्थ :- राजगुरु स्वामी बलरामदेशिक जी ने कहा-इस समय अब मैं परम्परानुप्राप्त लोकदायित्वनिर्वहण से मुक्त होकर आत्मचिंतन करूंगा अतः अब तुम्हें ही आश्रमोचित सम्पूर्ण कार्यों का सम्पादन करना है।

स्वामी सङ्कर्षणाचार्यो भूतो राजगुरुस्तदा।
कथ्यते तच्च ह्यैतिह्यं हेतू राजगुरोः परम् ॥१०२॥

अर्थ :- स्वामी बलरामदेशिकाचार्य जी द्वारा राजगुरु पद पर अभिषिंक्त किये जाने से स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी राजगुरुपद से अलंकृत हुए। यहाँ प्रसंगानुसार राजगुरु परम्परा के ऐतिह्य पर संक्षेप में प्रकाश डालना उपयुक्त है , अतः कहते हैं :-

श्रूयते कथ्यते चापि नानाशास्त्रविशारदैः।
एषैव पुण्यभूमिः सा वशिष्ठो यत्र प्रावसत् ॥ १०३ ॥

अर्थ : विविध शास्त्रों के निष्णात विद्वान् ऋषि-मुनियों द्वारा यह कहा एवं सुना जाता है कि यहीं (श्री आचार्य मंदिर नयागाँव चित्रकूट) वह पुण्यभूमि है, जहाँ श्रीराम को अयोध्या वापस चलने के लिए मनाने हेतु समागत श्रीभरत जी के साथ आये हुए राजगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी ने निवास किया था एवं राजधर्म का उपदेश किया था।

आगतास्तप आस्थातुं विज्ञायैतद्धि पुङ्गवा: ।
स्वामिनो मधुराचार्या: श्रीवैष्णवदिवाकरा: ॥१०४॥

अर्थ-यह भूमि राजगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी के निवास से पवित्र एवं तपोनुकूल है, ऐसा मानकर श्री वैष्णवसम्प्रदाय में सूर्य की भाँति तेजस्वी जयपुर नरेश के गुरुदेव स्वामी मधुराचार्य जी महाराज जिन्हे पयोहारी जी के नाम से भी जाना जाता था, यहाँ आकर लोक मंगल हेतु तपस्या की तथा यहीं निवास भी किया।

सवायीमानसिंहेन मधुराचार्यसद्गुरो: ।
निर्विघ्नं तप आस्थातुमाश्रमो निर्मित: पुरा ॥१०५॥

अर्थ-अनेक षाण्मासिक पयोव्रतों का अनुष्ठान करने के कारण जिनकी पयोहारी नाम से प्रसिद्धि थी, उन स्वामी मधुराचार्य जी महाराज (सवाई मानसिंह जयपुर नरेश के गुरु) की तपस्या में कोई विघ्न न आये। एतदर्थ एक आश्रम का निर्माण सवाई मानसिंह ने करवाया था, जो आचार्य आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है।

वसुवेदवसुब्रह्मविक्रमाब्दगते शुभे।
प्रासादो निर्मितो भाति राजसिंहेन वेधसा ॥१०६॥

अर्थ : यह भव्य प्रासाद (श्री आचार्य मन्दिर चित्रकूट) १८४८ विक्रम संवत् में सवाई मानसिंह द्वारा बनवाया गया। जो अपनी भव्यता एवं दिव्यता से आलोकित हो रहा है।

चित्रकूटतपोभूमौ पूर्वे मन्दाकिनीतटे।
विद्यते सुन्दरं किञ्चिन् मन्दिरं रामभावितम् ॥१०७॥

अर्थ : चित्रकूट की तपोभूमि में मन्दाकिनी नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित भगवान् श्रीरामकुमार जी का दिव्य मन्दिर सुशोभित हो रहा है।

श्रीशैलराजमणिचित्रितचित्रकूटे,
मन्दाकिनीविमलवारि पवित्रकूटे।
आचार्यराजगुरुमन्दिरदिव्यकूटे,
संशोभितो जयतु रामकुमारदेवः ॥१०८॥

अर्थ : पर्वतों में श्रेष्ठ चित्र-विचित्र पर्वत श्रृंखलाऐं वाले श्रीचित्रकूटधाम में निष्यन्दमान मन्दाकिनी नदी के स्वच्छजल से पवित्रीकृत उत्तुंग क्षेत्र में अवस्थित श्री आचार्य मन्दिर में विराजमान श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीताविशिष्ट श्रीरामकुमार भगवान् की जय हो।

नानाराजावतंसानां धर्मशिक्षाप्रपाठकाः।
जायन्ते गुरवस्तेन श्रीराजगुरु-आश्रमः ॥१०९॥

अर्थ : राजगुरु आश्रम, जो आचार्य मन्दिर के नाम से जनविख्यात है। उसे राजगुरु आश्रम इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस आचार्य परम्परा के आचार्य जयपुर नरेश के राजगुरु होने के साथ ही अन्य विभिन्न राजवंशों के भी राजगुरु हैं।

अथ पूर्वाचार्यवर्यान्नुत्तराहोविलान् परान्।
ववन्दे सन्मुनिश्चायं तेषां पादानुगन्तुकः ॥११०॥

अर्थ : इसके उपरान्त स्वामी संकर्षणाचार्य जी ने उत्तरअहोविल के पूर्ववर्ती महान् धर्माचार्यों को बारम्बार प्रणाम निवेदित किया। क्योंकि ये स्वयं उनके पदचापों के ही अनुगन्ता हैं।

श्रीलक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥१११॥

अर्थ : श्रीमन्नारायण भगवान् से जिसका आरंभ हुआ है तथा जो श्रीनाथ यामुनि जैसे महान् भक्तों द्वारा संवाहित हुई है, जिसके प्रवर्तक आचार्य श्रीमदाद्य जगद्गुरु रामानुजाचार्य जी महाराज हैं, उस पावन गुरुपरम्परा में परम्परानुगत आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूँ।

बौद्धान्धकारपरिहारदिवाकराय
अद्वैतवादकरियूथमृगाधिपाय।
श्रीवैष्णवाम्बुनिधिपूर्णनिशाकराय
तस्मै नमोऽस्तु सततं यतिपुङ्गवाय॥ ११२॥

अर्थ - वैदिक सनातम धर्म में अनास्थित बौद्धरूप अन्धकार को विनष्ट करने में सूर्य की भाँति, शंकराचार्य जी द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवादरुपी हाथियों के समूह को समाप्त करने में सिंह की भाँति पराक्रमशील श्रीवैष्णवसम्प्रदायरुपी सागर में उद्भूत पूर्णचन्द्र की भाँति सुख प्रदान करने वाले यतिश्रेष्ठ श्री मदाद्यजगद्गुरु रामानुजाचार्य जी को सतत प्रणाम समर्पित है।

श्रीमन्नारायणी भक्तिश्चित्ते यस्य विराजिता।
मधुराचार्यपादाय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥११३॥

अर्थ : भगवान् श्री नारायण की अहैतुकी कृपाशीला भक्ति जिनके हृदय में विराजित रहती है उन परमाचार्य श्री मधुराचार्य जी महाराज को प्रणाम है।

मधुराचार्यशिष्याय मधुरस्वरभाषिणे।
पयोहारीति मुनये भूयो भूयो नमो नमः॥ ११४॥

अर्थ - मधुर भाषणशील श्रीमधुराचार्य जी के कृपापात्र गोदुग्ध मात्र का सेवन करने वाले महान सन्त राजगुरु स्वामी पयोहारी जी महाराज को कोटिशः प्रणाम है।

नित्यं भागवती वार्ता नित्यं भागवती कथा।
येन सङ्कीर्तिता तस्मै नमो भागवताय च ॥ ११५ ॥

अर्थ - जिनकी वाणी सर्वदा भगवत चर्चाओं में ही व्यस्त रहती है तथा भागवत कथा रसपान में अनुरक्त रहती है, ऐसे राजगुरु परम्परा के आचार्य स्वामी भागवताचार्य जी महाराज को प्रणाम है।

सुदर्शनसमं तेजो विद्यते यस्य मानसे।
तस्मै सुदर्शनाचार्यस्वामिने मुनये नमः ॥ ११६ ॥

अर्थ - तपोबल की अधिकता से जिनके मानस में सुदर्शनचक्र की भाँति ही दिव्यतेज समाहित है। ऐसे महान् तपस्वी राजगुरु स्वामी सुदर्शनाचार्य जी महाराज को प्रणाम है।

सुदर्शनार्यशिष्याय गोविन्दाचार्यधीमते।
ज्ञानवैराग्यभक्तीनामालयाय नमो नमः ॥ ११७ ॥

अर्थ - स्वामी सुदर्शनाचार्य जी के शिष्य स्वामी गोविन्दाचार्य जी महाराज जो ज्ञान वैराग्य तथा भक्ति के साक्षात् निवास स्थान थे, ऐसे परमभागवत को प्रणाम है।

गोविन्दार्यकृपापात्रं कृपालुं कर्मयोगिनम्।
वन्दे पोपूज्यमानं तं दयाल्वाचार्यसद्गुरुम् ॥ ११८ ॥

अर्थ - राजगुरु स्वामी गोविन्दाचार्य जी महाराज जो परमकृपालु यथार्थ कर्मयोगी थे, ऐसे परमपूज्य राजगुरु स्वामी दयाल्वाचार्य जी महाराज को प्रणाम है।

सच्चिदानन्दसन्मूर्तिं ज्ञानाचार्यमुनिं परम्।
वन्दे राजगुरुं देवं योगपीठसमाश्रितम् ॥ ११९ ॥

अर्थ - जो सत्य, ज्ञान एवं आनन्द के मूर्तिमान् विग्रह थे तथा योगपीठ पर समाश्रित राजगुरुपरम्परा के महान् संवाहक आचार्यों में अन्यतम हैं, उन ज्ञानाचार्यजी महाराज को सादर प्रणाम करता हूं।

गोभिः प्रेमामृतं नित्यं पिबन्तं सद्गुरुं वरम्।
गोविन्दाचार्यपादाब्जं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ १२०॥

अर्थ - जो भगवत् प्रेमामृत का अपनी इन्द्रियों द्वारा पान करते हैं तथा राजगुरुपरम्परा के परमाचार्य हैं, उन स्वामी गोविन्दाचार्य जी महाराज को बारम्बार प्रणाम है।

वाणी विष्णुगुणानुवादकथने नित्यं नरीनृत्यते,
पाणी विष्णुमयं जगच्च भजतो विश्वं जपन् मानसः।
आत्मा यस्य च विष्णुपादनिरतो मोमोद्यमानाकुल-
स्तं गोविन्दपदारविन्दमनिशं भक्त्या नमस्कुर्महे॥ १२१॥

अर्थ - जिनकी वाणी भगवान् लक्ष्मीनारायण के गुणानुवाद करने में आनंदानुभूति करते हुए नरीनर्तन करती है। दोनों हाथ विष्णुमय विश्व को मानकर निरन्तर जनसेवा में तत्पर हैं। मन नारायण के ध्यान में तल्लीन है तथा आत्मा विष्णुपादों में समर्पित हुई आनंदातिरेक से पुलकित है, उन राजगुरु स्वामी गोविन्दाचार्य जी के चरण कमलों में भक्तिपूर्ण सादर सतत नमस्कार है।

नारायणमयान् नित्यं भजनानन्दनिर्भरान्।
कृपालून् सद्गुरुन् नौमि श्रीबलरामदेशिकान्॥ १२२॥

अर्थ - जो निरन्तर ही नारायण का भजन करते रहने से नारायणमय हैं, भजन के आनंद में ही निर्भर हैं, परम कृपालु एवं सच्चे अर्थों में सद्गुरु हैं, उन परमाचार्य स्वामी बलरामदेशिकाचार्य जी के चरणों में प्रणाम है।

नित्यं रामकुमारपादनिरतं भक्त्योघपूतं मनो,
वाणी यस्य च रामनाम सततं जेगीयते प्रेमतः।
सर्वं राममयं चराचरमिदं चर्यागतं वै जगत्
सोऽयं श्रीबलरामदेशिकमुनिः श्रीवैष्णवो नूयते॥ १२३॥

अर्थ - जिनका मन भगवान श्रीरामकुमार जी की सेवा में सतत संलग्न रहने से निष्कल्मष हो गया है, जिनकी वाणी प्रेमाकुल होकर निरन्तर रामनाम का

गान करती है जो सम्पूर्ण चराचर को राममय मानकर तद्नुरूप ही आचरण भी करते हैं। ऐसे महान हृदय वाले राजगुरु परम्परा के यश को बढ़ाने वाले स्वामी बलराम देशिकाचार्य जी को प्रणाम है।

श्रीशं रामकुमाराख्यं श्रीसङ्कर्षणसेवितम् ।
वन्दं वन्दं गिरा मृद्वा कृतवान् वन्दनं मुनिः ।।१२४।।

अर्थ - स्वामी संकर्षणाचार्य जी ने अपनी मधुर एवं निर्दोष वाणी से श्री लक्ष्मण द्वारा सेवित भगवान् रमानाथ श्रीसीतावल्लभ शरणागतप्रतिपालपरायण श्रीरामकुमार भगवान् की वन्दना की।

महिम्नस्ते पारं सकलसुखसारस्य महत-
स्तथाऽसारे लोके रघुवर बुधः पारयति कः ।
मुनीन्द्रैर्योगीन्दैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता,
न यातं ते पारं रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ।।१२५।।

अर्थ - हे प्रभु ! श्रीरामकुमार भगवान् ! आपकी दुर्ज्ञेय महिमा जो सभी सुखों का सार है उसका इस असार संसार में कौन मतिमान् व्यक्ति पार पा सकता है। अर्थात् निष्काम भक्त तो पार पा नहीं सके फिर सकामी कैसे पा सकता है ? मुनियों योगियों, सन्यासियों, देवताओं, हनुमान आदि विशिष्ट भक्त भी तो आपका पार नही पा सके हैं। हे प्रभु राघवेन्द्र ! मैं आपकी शरण हूँ, कृपया मुझ पर द्रवीभूत हों।

न वाञ्छामि स्वर्गं भयहर ! न पौरन्दरपदं,
न वै प्राज्यं राज्यं न च सुखिनिधिं वेङ्कटपते ।
परं काङ्क्षाम्येतत्तव चरणसेवामविरतं,
कुरुष्वाभीष्टं मे रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ।।१२६।।

अर्थ - हे भयहारी ! न तो मैं स्वर्ग चाहता हूं, न ही इन्द्र की पदवी। मुझे धन, राज्य तथा सुखादि की भी कामना नही है। हे वेंकटेश ! मैं तो केवल आपके चरणकमलों की अविरत सेवा में संलग्न रहता चाहता हूं। हे रघुंवर ! मेरे अभीष्ट को पूर्ण कर दीजिए। मैं आपकी शरण में हूं आप मुझ पर द्रवीभूत हों

सदा सेव्यः पूर्णो जगति किल साक्षी तनुभृतां,
धराधीशस्त्राता भवभवभयत्रस्त जनुषाम्।
सतां ध्येयो गेयः कविवरगिरागीतचरित-
स्त्वमेव श्रीरामो रघुवर नतोऽहं द्रवतु मे ॥१२७॥

अर्थ - आप ही परिपूर्णतम सदा सेवनीय एवं जगत् में प्राणिमात्र के साक्षी, धराधीश तथा सांसारिकजनों द्वारा दीयमान कष्टों के हरणकर्ता मुनियों एवं सज्जनों द्वारा ध्येय तथा कवियों द्वारा गीतचरित हैं। हे प्रभु रामकुमार ! मैं आपकी शरण हूं। मुझ पर द्रवीभूत हो।

अयोध्यानाथस्त्वं रूचिरगतिभङ्गो विधुमुखो,
नराकारो धीरो धरणिभरहर्ता सुरनुतः।
अहल्याशापघ्नो दशरथसुतः संसृतिहरो,
मुकुन्दो वीरस्त्वं रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ॥१२८॥

अर्थ - हे प्रभु ! आप अयोध्यानाथ हैं, आपकी गति कमनीय है, हे ! चन्द्र की भांति स्निग्ध मुख वाले, मनुष्यरुपधारी परमात्मा । हे ! पृथ्वीभारहारक, आप देवस्तुत, अहल्योद्धारक, श्रीदशरथ पुत्र एवं संसार से तारने वाले वीर हैं। मैं आपका शरणागत आपसे प्रार्थी हूँ। कृपया मुझ पर द्रवीभूत हों।

कविस्त्वं गोविन्दः सुरकुलभवश्चासुरहरो,
मुनीनां विप्राणां सततमनुगेयो कलगिरा।
अमानी मानज्ञो जनकतनयालालितपद-
स्त्वमेव श्रीविष्णू रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ॥१२९॥

अर्थ - हे प्रभु ! आप ही एकमात्र कवि, गोपालक, असुरवंशनाशक, मुनियों एवं ब्राह्मणों द्वारा सतत कलकम्रगिरा से अनुगेय है, अमानी, मानज्ञ, जनकजा श्री सीता जी द्वारा सेवित पदवान् आपश्री हैं तथा विश्व का भरण पोषण करने वाले श्रीविष्णु भी आप हैं। हे रामकुमार भगवान् ! मैं आपका शरणागत हूँ। कृपया मुझ पर द्रवीभूत हों।

हृषीकेश: शौरी रविशतनिभ: शान्तमनसो ,
ललाटे काश्मीर: कपिपतिसखा शान्तविधुर: ।
रमानाथो भर्ता निखिलजनपूज्यो हृदिशयो
बलिध्वंसी त्वं वै रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ॥१३०॥

अर्थ - आप ही इन्द्रियों के स्वामी, परमशूर, सैकड़ों सूर्य की आभा वाले तथा शान्त मनस्वी हैं। आपने ललाट में केशर का तिलक लगा रखा है। आप सुग्रीव के मित्र तथा अपनी भोली सूरत से चन्द्र को भी तिरस्कृत करने वाले हैं। आप ही लक्ष्मीनाथ, जगत्पालक सर्वजन पूज्य, प्राणिमात्र के हृदय में निवास करने वाले तथा बलि के निग्रहकर्ता हैं। मैं आपका शरणागत हूँ। कृपया मुझ पर द्रवीभूत हों।

चिदाकारो धाता जनकतनयासेवितपद:,
शरण्यो लोकानां नरसुरगणैर्गीतसुयशा: ।
समासीन: पीठे रविशतनिभे शोभितवपु-
स्त्वमेव श्रीकृष्णो रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ॥१३१॥

अर्थ - हे प्रभु ! आप ही ज्ञान स्वरुप, सृष्टि रचयिता, श्रीसीता जी द्वारा सेवित पद वाले लोकमात्र के शरण्य मनुष्य देवता आदि द्वारा गीतिकीर्ति, शतसूर्य की आभा वाले पीठ पर विराजमान भक्तों के कष्टहर्ता श्रीकृष्ण हैं। हे रामकुमार भगवान् ! मुझ शरणागत पर द्रवीभूत हो जाइये।

विभु: सौमित्रीड्य: कपटमृगघाती वनचरो,
प्रपन्नानां गोप्ता त्रिपुरहरसङ्गीतचरित: ।
रणश्लाघी दान्तो गजरिपुहरस्तुष्टमनस-
स्त्वमेवासि श्लाघ्यो रघुवर ! नतोऽहं द्रवतु मे ॥१३२॥

अर्थ - हे प्रभु ! आप ही सर्वव्यापक, लक्ष्मण जी के स्वामी कपटमृग के हन्ता, प्रपन्नों के रक्षक, त्रिपुरासुर के विनाशक एवं रण में प्रशंसित तथा दयालु हैं। आप ही गजेन्द्र शत्रु ग्राह के हन्ता परवन्दनीय प्रभु हैं। मैं आपका शरणागत हूँ। कृपया मुझ पर द्रवित हों।

तुलसीदासमनोभावभावितं रामवन्दनम्।
प्रातः सायं पठेन्नित्यं स याति परमं पदम् ॥१३३॥

अर्थ - श्रीलक्ष्मणसीताविशिष्ट श्रीरामकुमार भगवान् के अनन्य उपासक स्वामी सङ्कर्षणाचार्य जी के मनोभावों से भावित अथवा ग्रन्थकर्ता डॉ. तुलसीदासपरौहा के मनोभावों से भावित इस श्रीरामवन्दना (श्रीरामाष्टक) को जो व्यक्ति प्रातः एवं सायंकाल पढ़ेगा, वह परमपद को प्राप्त करेगा।

माता त्वमेवासि पिता तथैव
सद्बन्धुवर्गो द्रविणं बलञ्च।
मित्रञ्च नान्यद्धरिमन्तरेण,
तस्मात्तवाहं शरणं प्रपद्ये ॥१३४॥

अर्थ - हे प्रभु ! आप ही मेरी माँ हैं, पिता, बन्धु, धन, शक्ति, मित्र भी आपके सिवा और कोई दूसरा नहीं है। अतः मैं आपकी शरण में हूँ।

चित्रकूटः परं तीर्थं देवैरपि सुदुस्त्यजम्।
न्यवसत् ससुखं रामो दुःखमूलेऽपि कानने ॥१३५॥
चित्रकूटसमं तीर्थं भूतले नैव नैव च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य चित्रकूटं समाश्रयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ - चित्रकूटधाम जो श्रीराम द्वारा बारह वर्ष तक निवास किये जाने से परम तीर्थ बन गया है। वह देवताओं द्वारा भी सुदुस्त्यज है। जंगल दुःखमूलक कहा जाता है, पुनरपि श्रीराम ने जिस कानन में सुखपूर्वक १२ वर्ष तक निवास किया हो, उस चित्रकूट के समान तीर्थ इस भूतल में दूसरा कोई नहीं है। अतः आत्मिक कल्याण हेतु सब कुछ छोड़कर चित्रकूट का ही समाश्रयण एवं सेवन करना चाहिए।

कामदं हनुमद्धारां चित्रकूटविहारिणम्।
चित्रकूटरजो वन्दे भूयो मन्दाकिनीपयः ॥ १३७ ॥

अर्थ - मैं श्रीचित्रकूटधाम में सुलभ श्रीकामतानाथ (कामदागिरि) हनुमानधारा, श्रीचित्रकूटबिहारी श्रीरामकुमार, श्रीचित्रकूट की रज एवं श्रीमन्दाकिनी जी के जल की वन्दना करता हूँ।

सुवर्णकूटं बहुवर्णकूटं,
अनेककूटावृतकूटकूटम्।
माणिक्यकूटं शिवशैलकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १३८॥

अर्थ - मैं, रंग बिरंगे उत्तुंग प्रदेशों वाले, सुवर्ण मणि आदि से ऋद्ध श्रृंखला वाले, अनेक पर्वतों से घिरे हुए पर्वतोत्तम, श्रीमत्तगयेन्द्र नामक पुरातन शिव शैलवाले श्रीचित्रकूट की शरण ग्रहण करता हूँ।

संसारतापानलमेघकूटं,
श्रीसीतया लालितकूटकूटम्।
श्रीलक्ष्मणेनादृतरामकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १३९॥

अर्थ - संसारजनित तापानल के लिए मेघकूट, श्रीसीता जी के पदसंचरण से संल्लालित, श्रीलक्ष्मण जी द्वारा सम्मानित श्रीकामदगिरि चित्रकूट की शरण ग्रहण करता हूँ।

मन्दाकिनीवारिपवित्रकूटं,
श्रीरामपादाङ्कितमञ्जुकूटम्।
सिद्धैः प्रसिद्धैर्नुतपादकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १४०॥

अर्थ - मन्दाकिनी जल से पवित्रीकृत प्रदेश वाले, श्रीराम प्रभु के चरणचिह्नों से अंकित शिखर वाले, सिद्धों, महायोगियों आदि द्वारा स्तुत श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

लोकान् समस्तान् ननु तारयन्तं,
दुर्भोग्यभोगान् किल नाशयन्तम्।
नीचातिनीचानपि पावयन्तं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १४१॥

अर्थ - सम्पूर्ण लोकों को मोक्ष प्रदान करने वाले, कष्टपूर्ण भोग्य भोगों को नष्ट करने वाले, नीचातिनीच प्राणियों को भी पवित्र करने वाले श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीरामशय्याश्रितभावकूटं,
भिल्लैः सुगीतं शुचिपुण्यकूटम्।
अध्यात्मविद्यानिधिगुप्तकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १४२॥

अर्थ - जो श्रीरामशय्या पर आश्रित जनभावनाओं का कूटहै, वनवासी कोल भिल्ल आदि जनजातीय मनुष्यों द्वारा परिगीत है, पवित्र एवं पुण्यकूट है, अध्यात्म विद्यारूप निधियों का गोपनीय कूट है, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

अत्र्यादिना ध्यातमनादिकूटं,
पापीयसां कल्मषनाशकूटम्।
आनन्दकूटं हरिकम्रकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १४३॥

अर्थ - अत्रि आदि ऋषियों द्वारा ध्यातव्य, कामवासना का विनाशक, पापियों के पापों का संहारक, आनन्द का कूट, वानरादि की बहुलता से कमनीय कूट वाले, श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रृङ्गारदेशं जनकात्मजायाः,
संहारदेशं जनतापकानाम्।
सत्कर्मदेशं किल राघवस्य,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये॥ १४४॥

अर्थ - जो श्रीसीताजी की श्रृंगारभूमि (स्फटिक शिला) है, तथा जनसामान्य के तापों की संहारभूमि एवं श्रीराघव सर्वकार की सत्कर्मभूमि है, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

फुल्लैः प्रफुल्लैर्मृदुगन्धवाहै-
राराधते यं प्रकृतिर्वधूटी।
शान्तं प्रशान्तं वैकुण्ठपान्थं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १४५ ॥

अर्थ - मधुर गन्ध वाले नानाविध प्रफुल्लित पुष्पों से प्रकृतिरूपी वधू जिसकी आराधना करती है। उस परम शान्त, बैकुण्ठ लोक के मार्गभूत श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

मन्दानिलाह्लादितभव्यकूटं,
यज्ञानलैः पावितहव्यकूटम्।
श्रीरामसञ्चारितरम्यकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १४६ ॥

अर्थ - मन्दानिल से आह्लादित भव्य कूटों वाले, यज्ञीय अग्नि से पावित हव्य कूटों वाले तथा श्रीराम जी के संचारण से रमणीय कूट वाले श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

विद्यातपोयोगविरागभूमिं,
यागप्रयागाश्रितभावभूमिम्।
अध्यात्मपारङ्गतयोगिभूमिं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १४७ ॥

अर्थ - विद्या, तपस्या, योग एवं वैराग्य की भूमि, याग एवं प्रकृष्टयागों वाली भावभूमि, अध्यात्म में पारंगत योगियों की भूमि जो श्रीचित्रकूटधाम है, उसकी शरण ग्रहण करता हूँ।

वाल्मीकिनाऽह्लादितदेशमेकं,
गोस्वामिनाभावितदेशमेकम्।

पिङ्गाक्षसंवासितदेशमेकं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १४८ ॥

अर्थ - श्रीबाल्मीकिजी द्वारा आह्लादित देश वाले, गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा भावित देश वाले, श्रीहनुमान् जी द्वारा सतत वासित देश वाले श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

दुर्वाससश्चन्द्रमसश्च दत्ता-
त्रेयप्रभूणामवतारदेशम्।
श्रीकामदेशं मुनिवर्यदेशं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १४९ ॥

अर्थ - जो महर्षि दुर्वासा, चन्द्रमा एवं दत्तात्रेय की अवतार भूमि है, कामनाओं को पूर्ण करने वाले देवों के भी स्वामी मुनियों की भूमि है, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

गीतं कवीनां चरितं मुनीनां,
श्रीजानकीचारितपूतकूटम्।
संसारसिन्धोस्तरणैककूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५० ॥

अर्थ - जो कवियों द्वारा गीत है, मुनियों द्वारा संचारित प्रदेश है एवं श्रीजानकी जी द्वारा परिचरण करने से पवित्रकूट है, उस संसारसिन्धु से तरण के एकमात्र कूट श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीजानकीकुण्डमथापि गुप्त-
गोदावरीवारिपवित्रकूटम्।
सद्धर्मकूटं शुभकर्मकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५१ ॥

अर्थ - श्रीजानकी कुण्ड तथा श्रीगुप्तगोदावरी जी के जल से पूतकूट धर्माचार्यों की भूमि, सत्कर्म भूमि श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

दैवैर्मनुष्यैरथभावपुष्पै-
र्वनेचरैश्चापि च पक्षिवृन्दैः।

पोपूज्यमानं सततं ककूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५२ ॥

अर्थ - जो देवताओं, मनुष्यों, वनचरों, पक्षिवृन्दों आदि द्वारा सतत ही भावपुष्पों द्वारा पूजित है एवं परमब्रह्म की निवासभूमि है, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

वासन्तिकं चन्दिरकान्तिकूटं,
जनान्तिकं सुन्दरशान्तिकूटम्।
नैशान्तिकं नूतनदीप्तिकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५३ ॥

अर्थ - जो वासन्तिक चन्द्रप्रभा की कान्ति से आलोकित एवं एकान्त वास हेतु उपयुक्त भूमि है, शान्ति प्रदान करने वाली भूमि है, उस प्रात: कालीन नूतन प्रकाशवाले श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीरामसङ्कीर्तनमेव नित्यं,
लतावितान भ्रमरादिगीतम्।
कदम्बजम्बूपनसाम्रकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५४ ॥

अर्थ - जहां के लता बितानों में भ्रमरादिकों द्वारा किए जा रहे गुंजार में श्रीराम ध्वनि सुनाई देती है, जो कदम्ब, जामुन, कटहल, आम आदि वृक्षों से आढ्य है, उस चित्रकूट की शरण ग्रहण करता हूँ।

यस्य त्रिकूटे स्वयमादिदेव:,
श्रीस्वामिमद्गञ्जननामधेय:।
अनादितो राजति तादृशं तं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५५ ॥

अर्थ - जहां त्रिकूट पर्वत में स्वयं आदिदेव श्रीमदगंजनस्वामी (पुरातन शिवलिंग) अनादिकाल से ही विराजते हैं, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

मन्दाकिनीझर्झरगीतगीतं,
पयस्विनीचारुपयःप्रपूतम्।
महार्घरत्नाकरकूटकूटं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५६ ॥

अर्थ - जो मन्दाकिनी की झर्झरध्वनि से गीत एवं पयवस्वनीजी के पावन जल से पुनीत है, उस बहुमूल्य रत्नों वाले श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

धात्रा पुराऽऽराधितपुण्यतीर्थं,
पम्पापुरं मङ्गलकोटितीर्थम्।
देवाङ्गनामञ्जुलगीततीर्थं,
श्रीचित्रकूटं शरणं प्रपद्ये ॥ १५७ ॥

अर्थ - प्राचीन काल में स्वयं ब्रह्मा जी ने जहां आकर यज्ञ वेदी में यज्ञ सम्पादित किया था। जहां पम्पापुर, कोटितीर्थ, देवांगना आदि तीर्थ विद्यमान हैं तथा जो देवांगनाओं द्वारा गीत है, उस श्रीचित्रकूटधाम की शरण ग्रहण करता हूँ।

चित्रकूटस्तवं पुण्यं तुलसीदासकीर्तितम्।
श्रद्धया पठनान्नित्यं रामभक्तिः प्रकल्पते ॥ १५८ ॥

अर्थ - श्रीसीतालक्षमणविशिष्ट श्रीरामकुमार भगवान् के परम उपासक राजगुरु स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी द्वारा अथवा ग्रन्थकर्ता डॉ. तुलसीदास परौहा द्वारा कीर्तित श्रीचित्रकूटस्तव को श्रद्धापूर्वक पढ़ने से श्रीरामभक्ति प्राप्त होती है।

इति डॉ. तुलसीदासपरौहाप्रणीते सङ्कर्षणचरितामृते पूर्वार्द्धभागः

समाप्तः

उत्तरार्द्धभागः

श्रीमन्नारायणीयाज्ञां लोकापद्विनाशिनीम्।
स्वामिसङ्कर्षणाचार्यः कर्तुमारब्धवान् ततः ॥ १५९ ॥

अर्थ - इसके उपरान्त राजगुरु पद पर मूर्धाभिषिक्त शुकावतारी स्वामी संकर्षण प्रपन्नाचार्य जी ने भगवान् नारायण की लोकापद्विनाशिनी आज्ञा का अनुपालन करना प्रारंभ किया।

प्रारभल्लोककल्याणदं वाचनं,
श्रीशुकेनेरितां सत्कथां भारते।
श्रीशुको वक्तिसाक्षात् कथां माधवीं
वै मिथो भाषमाणैर्नरैर्भाष्यते ॥ १६० ॥

अर्थ - उन्होंने संसार का मंगल करने वाली पावन तथा श्रीशुकदेव जी द्वारा प्रभाषित श्रीमद्भागवत कथा का वाचन भारतीय धरा पर प्रारंभ किया। उनके द्वारा प्रभाषमाण कथा का श्रवण करके श्रोतागण भावविभोर होकर यह कहने लगे कि ये तो साक्षात् शुकदेव ही बोल रहे हैं।

भोः ! कथं पापराशिस्त्वया रक्ष्यते,
पुण्यराशिस्त्वया प्रोज्झ्यते वै कथम्।
भारते भारता भारतीया तनू-
रागता दुःखनाशाय न ज्ञायते ? ॥ १६१ ॥

अर्थ - अरे मनुष्यों ! तुम लोग अपनी पापराशि का संचय क्यों किये बैठे हो ? तथा इस कथा सुधारुपी पुण्यराशि का परित्याग क्यों कर रहे हो ? क्या तुम नहीं जानते निरन्तर प्रकाशोन्मुख भारतीय धरा में एक विलक्षण आत्मसत्ता ने अवतार धारण किया है।

यस्तु पारीक्षितं मृत्युमज्ञानजं,
श्रीशुकोऽनाशयत् सप्तवारावधौ।
तेन चागत्य भूयः कथा भाष्यते,
यो जनैः स्वामिसङ्कर्षणः कथ्यते॥ १६२॥

अर्थ - जिन श्रीशुकदेवमुनि ने अज्ञान के कारण मृत्यु से भयभीत परीक्षित को सप्ताह मात्र में श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण कराया था तथा उसके भय को विनष्ट कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया था वही श्रीशुकदेव आज राजगुरु स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी महाराज के रुप में अवतीर्ण होकर श्रीमद्भागवत के कथासुधारसवर्षण से जनोपकार कर रहे हैं।

येन श्रुता कथा स्वामिश्रीसङ्कर्षणभाषिता।
त्रिभिस्तापैर्विनिर्मुक्तो जातो विष्णुपरायणः॥ १६३॥

अर्थ - जिसने भी स्वामी संकर्षणचार्य जी के श्रीमुख से निःसरित भागवत कथा का एक बार भी रसपान किया है, वह तीनों तापों से मुक्त होकर विष्णु परायण हो गया है।

रसवेदोत्तरे वर्षे विंशके विक्रमे शुभे।
श्रावणे विष्णुयज्ञान्ते नानाधर्मविदां पुरः॥ १६४॥

अर्थ - विक्रम संवत् २०४६ श्रावण मास में आचार्य आश्रम द्वारा आयोजित श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ में देश के मूर्धन्य धर्माचार्यों की उपस्थिति में यज्ञ के समापनावसर पर.....

रङ्गरामानुजाचार्यैः श्रीवैष्णवदिवाकरैः।
योगपीठमिदं नाम कृतं चाश्रमकस्य नु॥ १६५॥

अर्थ - श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी रंगरामानुजाचार्य जी ने श्रीराजगुरु आचार्य आश्रम को योगपीठ नाम से अलंकृत किया।

योगोष्टाङ्गविधो येषां चान्तर्बहिर्लक्ष्यते।
योगपीठाधिपस्तस्माज्जायतां वैष्णवाधिप: ॥ १६६ ॥

अर्थ - अष्टांग योग की साक्षात् कृति जिनकी अन्त: एवं बाह्य क्रियाओं में है, ऐसे महान योगी स्वामी संकर्षणाचार्य जी द्वारा अलंकृत इस आश्रम को योगपीठ के नाम से जानना चाहिए।

योगपीठाधिपा विष्णुदीक्षाव्रता:,
स्वामिसङ्कर्षणाचार्यपादास्तदा।
धार्मिकैर्यौगिकैश्चापि सल्लक्षणै-
र्भान्ति कान्त्या समालोकयन्तो दिश: ॥ १६७॥

अर्थ - स्वामी रंगरामानुजाचार्य जी द्वारा योगपीठ घोषित करने से इस पीठ के पीठाधीश्वर के रुप में विष्णुदीक्षाव्रती स्वामी संकर्षणचार्य जी योगपीठाधीश्वर कहे जाने लगे तथा अपनी यौगिक एवं धार्मिकसाधनाजन्य तेज से दिशाओं को आलोकित करने लगे।

विप्रो वेदं विजानीयादाचरेद् वैदिकीं क्रियाम्।
समाजं शिक्षयेच्चैव मुनिना चिन्तितं भृशम् ॥ १६८ ॥

अर्थ - ब्राह्मणों की वेदों के अध्ययन में अनभिरुचि देखकर स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी ने इस विषय पर गम्भीर चिन्तन किया कि कैसे ? विप्र, वेदों को जाने तथा तदनुकूल आचरणवान् बनकर समाज को भी शिक्षित करें

निर्धनैर्धनहीनत्वात् पाठ्यन्ते नैव बालका:।
शिक्षितास्तेऽपि भूयासुरिति कृत्वा स्वयं मुनि: ॥ १६९ ॥

अर्थ - निर्धनता के कारण ब्राह्मण लोग समय धन तथा परिश्रमसाध्य वेदाध्ययन अपने पुत्रों को नही करा पाते है अत: वे सभी जिस प्रकार से पढ़ा सकें ऐसी व्यवस्था मुझे करना चाहिए। ऐसा विचार किया।

विद्यालयौ कृतौ तत्र स्वामिसङ्कर्षणेन च।
प्राच्यार्वाचीनपद्धत्या पाठ्यन्ते तत्र बालका: ॥ १७० ॥

अर्थ - स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी ने आश्रम परिसर में ही राजगुरु स्वामी बलराम देशिक जी के नाम से दो विद्यालयों की स्थापना की। जिनमें एक पारम्परिक संस्कृत पाठशाला तथा दूसरा आधुनिक विद्यालय है। जिनमें नि:शुल्क अध्ययन की व्यवस्था है।

अन्नक्षेत्रं च गोशालां मन्दिराणि बहूनि च।
निर्माय शिक्ष्यते धर्म: परमानन्दहेतुक: ॥ १७१ ॥

अर्थ - स्वामी संकर्षणाचार्य जी ने गरीबों के लिए अन्न क्षेत्र तथा वृद्ध गायों की सेवा हेतु गोशाला एवम् सनातन धर्म एवं सस्कृति के शिक्षणार्थ अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया। जो परमानन्द के कारणभूत हैं।

गेयो ध्येयोऽनुकर्तव्यो राम एवाभिरामक: ।
साक्षाद् विग्रहवान् धर्मो मन्दिरे सुप्रतिष्ठित: ॥ १७२ ॥

अर्थ - मानवता की प्रतिमूर्ति, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् लोकाभिराम श्रीराम ही मानवमात्र द्वारा गेय ध्येय एवं अनुकरणीय आचरणवान् है अतएव मन्दिर में साक्षात् धर्म की प्रतिमूर्ति श्रीरामकुमार भगवान् प्रतिस्थापित हैं।

रामचारित्र्यपूतं जनैश्चर्यतां,
यातु सीतेव नारी तु पातिव्रतम्।
जायतां जीवनं येन सौख्याकरं,
वै धिया स्थापितं भाति तन्मन्दिरम्॥ १७३ ॥

अर्थ - लोग श्रीराम के आदर्शचरित का अन्वाचरण करें। श्रीसीताजी के चरित से नारियाँ पतिव्रताधर्म की शिक्षा ग्रहण करें जिससे सभी का जीवन सुखी हो ऐसा विचारकर सुस्थापित आचार्य मन्दिर नयागांव चित्रकूट सुशोभित हो रहा है।

वायुपुत्रेण शिक्षेत लोकः स्वयं,
कीदृशं सेवकत्वं जनैश्चर्यताम्।
भ्रातृता लक्ष्मणेनापि बोबुध्यतां,
लोकशिक्षारतं मन्दिरं सुन्दरम्॥ १७४॥

अर्थ - वायुनन्दन श्रीहनुमानजी से लोक सेवा का व्रत सीखें तथा श्रीलक्ष्मण जी से भ्रातत्व का शिक्षण प्राप्त करें ऐसें महान विचारों का प्रतिफलभूत लोक शिक्षारत वह आचार्य मन्दिर सुशोभित हो रहा है।

यत्र रामः ससीतः ससौमित्रिको,
भाति वायोश्च पुत्रेण संसेवितः।
सच्चिदानन्दरुपः सुखं राजते,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १७५॥

अर्थ - जहां श्रीरामकुमार भगवान् की दिव्य झांकी श्रीसीताजी श्रीलक्ष्मण जी तथा श्रीहनुमान जी से संसेवित है तथा सच्चिदानंदरुप में प्रभु सुखपूर्वक आसीन है ऐसा वह आचार्य मन्दिर सुशोभित हो रहा है।

वेदपारङ्गतैर्वेदरीत्या सदा,
कार्यते पूजनं श्रद्धया नित्यशः।
वै सहस्राधिकं तौलसेयार्पणं,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १७६॥

अर्थ - वेदों में पारंगत श्रोत्रिय विप्रगण वैदिक विधान से जहां सतत पूजन में संलग्न रहते हैं तथा जहां सहस्रनामों से श्रीतुलसीजी का शालिग्रामजी पर सहस्रार्पण होता है, ऐसा वह मन्दिर बहुत सुम्दर प्रतीत हो रहा है।

प्रोच्यते यत्र गीता मुदा धीमता,
यन्त्रवत् कर्मकार्यं सदा मानवैः।
नित्यशः श्रूयते तात्त्विकं यज्जनै-
स्तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

अर्थ - जहां विद्वान् आचार्य प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता का प्रवचन करते हुए यन्त्रवत् फलेच्छारहित कर्तव्य करने की शिक्षा प्रदान करते हैं तथा जहां लोग परमतत्व की ही गम्भीर चर्चाओं को सुनते है ऐसा वह आचार्य मन्दिर बहुत सुन्दर है।

एकतो धेनुशाला विशाला नवा,
चैकतो यज्ञशाला शुभा राजते।
अन्यतो वाटिका काऽपि भव्या भवा,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥ १७८ ॥

अर्थ - जहां एक ओर आधुनिक सुविधा सम्पन्न भव्य तथा विशाल गोशाला गायों की सेवा करने की प्रेरणा एवं शिक्षा प्रदान करने वाली है, वहीं दूसरी ओर सुन्दर यज्ञशाला सुशोभित हो रही है। पुनः विभिन्न सुगन्धित पुष्पों से आद्यतर पुष्पवाटिका एवं तुलसीवन भी शोभा प्राप्त कर रहा है। ऐसा सुन्दरतर आचार्य मन्दिर सचमुच दीप्त हो रहा है।

जातु मेघावलौ वै नभोमण्डले,
जायते यत्र मायूरिकं नर्तनम्।
पक्षिवृन्दैरपि स्तूयमानं सदा,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥ १७९ ॥

अर्थ - जहाँ जब कभी आकाश मण्डल में सजल मेघों की उपस्थिति देखकर मयूर का नर्तन देखा ज़ाता है, जो नाना पक्षिवृन्दों के कलरव से स्तूयमान है वह आचार्य मन्दिर निश्चित रूप से अत्यन्त सुन्दर है।

यत्र सायन्तनं चारुसङ्कीर्तनं,
रामनारायणं वासुदेवं हरिम्।
मार्दवं सुस्वरं गीयते सन्ततं,
मिष्टशब्दायमानं हि तन्मन्दिरम् ॥ १८० ॥

अर्थ - जहां सायंकाल श्रीमन्नारायण के मधुर नामों का संकीर्तन नियत रुप में होता है, वैसा हरिनामों से मृदु एवं सस्वर संकीर्त्यमान आचार्य मन्दिर सुशोभित हो रहा है।

संस्कृतिर्विश्ववारा पुनर्जायतां,
संस्कृतं सार्वभौमं मुदा भाष्यताम्।
सद्धिया पाठशालेति संस्थापिता,
यत्र चाभाति तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १८१ ॥

अर्थ - भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति विश्वमात्र में प्रसारित एवं आचरित हो। संस्कृत भाषा विश्वमात्र में व्यवहरणशील हो। ऐसा विचार करके जिस मन्दिर में एक सुन्दर संस्कृत पाठशाला (श्री बलराम देशिक संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय) की स्थापना की गयी है। वैसा वह आचार्य मन्दिर आभान्वित है।

विप्रवंशोद्भवाः सौम्यशीलाकराः,
वेदवाणीरताः पोषकाः संस्कृतेः।
बालका निर्विकाराः समाधीयते,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १८२ ॥

अर्थ - ब्राह्मणवंश में उद्भूत सौम्य, सुशील मेधावान् तथा भारतीय संस्कृति के पोषक छात्रगण जहाँ अध्ययन करते हैं, वह आचार्य मन्दिर बहुत सुन्दर लग रहा है।

सत्यपूतं वचश्चैव नम्रश्चरो,
नैतिकी चैव विद्यार्थिनामुन्नतिः ।
शुभ्रचारित्र्यपूतं भवेज्जीवनं,
चिन्तयित्वेति छात्रालयः स्थापितः ।।१८३ ।।

अर्थ - विद्यार्थियों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास हो। वे सदा सत्य और मधुर भाषी हों। उनका व्यवहार विनयशील हो। यह सोचकर जहां छात्रावास की उचित व्यवस्था की गयी है वह आचार्य मन्दिर सुन्दर लग रहा है।

भोजनं वासनं वासनं पाठनं,
प्राप्य मोदावहा नित्यमग्रेसराः ।
कर्णधारा हि बाला इमे राष्ट्रियाः,
सर्वतो भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ।। १८४ ।।

अर्थ - जहाँ निवास करने वाले विद्यार्थीगण निःशुल्क भोजन, वस्त्र, आवास एवं शिक्षण प्राप्त कर निरंतर अग्रसर हैं तथा जो राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं, उन सबसे विशिष्ट वह आचार्य मन्दिर बहुत सुन्दर लग रहा है।

स्वास्थ्यलाभाय खेलन्तु बालाः सदा,
चैतदर्थं हि क्रीडाङ्गनं सुन्दरम् ।
खेलभावेन वै मित्रता चैकता,
शिक्ष्यते यत्र चैवंविधं मन्दिरम् ।। १८५ ।।

अर्थ - छात्र तन एवं मन से स्वस्थ रहें। उनमें परस्पर मित्रता तथा एकता का भाव विकसित हो। एतदर्थ सुन्दर क्रीडांगन की व्यवस्था वाला, वह आचार्य मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है।

मातरो धेनवः पूजनीयाः सदा,
रक्षणेनैव तासां वयं रक्षिताः ।
पालनीयाः सदाऽतो हि याः पालिता,
भाति भव्यव्यवस्थायुतं मन्दिरम्।। १८६।।

अर्थ - छात्रों का तन एवं मन स्वस्थ रहे, शरीर पुष्ट हो तथा परस्पर मित्रता तथा एकता का शिक्षण मिले। यह सोचकर जहां सुन्दर क्रीडांगन की व्यवस्था की गयी है वैसा आचार्य मन्दिर बहुत सुन्दर लग रहा है।

यद्धि वातानुकूलञ्च शुभ्रं शुभं,
किञ्च निर्मातृभिश्चाद्भुतं निर्मितम्।
श्रेष्ठकौशल्ययुक्तञ्च शोकापहं,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १८७॥

अर्थ - जो वास्तुशिल्पियों की श्रेष्ठ कुशलता का परिचायक है। जो स्वच्छ धवलिमायुक्त वातानुकूलित एवं जनमन के संताप को नष्ट करने वाला है, वह आचार्य मन्दिर अत्यन्त सुन्दर लग रहा है।

राजते चाग्रतो वै तुलस्याः स्थलं,
पूज्यते सादरं वै प्रियेयं हरेः।
श्रीतुलस्यै नमः श्रीतुलस्यै नमः,
कीर्त्यमानं स्थलं भाति तन्मन्दिरम्॥ १८८॥

अर्थ - जिस मंदिर के समक्ष मनभावन तुलसीवाटिका सुशोभित हो रही है तथा जो निरन्तर ही ॐ तुलस्यै नमः हरिप्रियायै नमः आदि वचनों से सम्पूजित होती है वैसा वह आचार्य मन्दिर सुन्दर लग रहा है।

दर्शनीयो विवाहस्तुलस्याश्च वै,
कार्तिके शुक्लपक्षे शुभैकादशी।
नाम पुण्ये तिथौ चोत्सवो वार्षिको,
जायते यत्र तन्मन्दिरं सुन्दरम्॥ १८९॥

अर्थ - जहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल एकादशी तिथि में श्रीतुलसीशालिग्राम जी का विवाहोत्सव अत्यन्त श्रद्धा एवं उत्साह से सम्पन्न होता है। तादृश वह आचार्य मन्दिर सुन्दर लग रहा है।

शारदीपूर्णिमायाश्च रासोत्सवे,
रासरासेश्वरीराधिकाकृष्णयो:।
चारुसङ्कीर्तनं दिव्यमानन्ददं,
जायते भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥ १९० ॥

अर्थ - जहाँ प्रतिवर्ष शरदपूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की धवल चन्द्रिका में महारासेश्वरी श्रीराधारानी एवं महारासेश्वर श्रीकृष्ण के मनोहर नामों का चारु संकीर्तन परमानंद एवं दिव्यता की अनुभूति कराता है। तादृश वह आचार्य मन्दिर सुन्दर लग रहा है।

शोभानावास आतिथ्यलाभाय वै,
शोभते यत्र भव्यव्यवस्थायुत:।
पूज्यसन्तो हि तिष्ठन्ति चागत्य वै,
तादृशं भाति तन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥ १९१ ॥

अर्थ - ''जहाँ अतिथिदेवो भव'' की परम्परा में अतिथिसेवा हेतु भव्यव्यवस्थायुक्त अतिथि भवन की उत्तम व्यवस्था है तथा जहाँ सन्त जन आकर विश्राम करते हैं, वह आचार्य मन्दिर सुन्दर है।

कापि पुण्यस्थली राजते पार्थवी,
रामपादाब्जपूता नुता निर्जरै:।
विष्णुपादाब्जदीक्षाव्रतै: सन्ततं,
राजमानं नमस्कुर्महे मन्दिरम् ॥ १९२ ॥

अर्थ - आचार्य मन्दिर की वह भूमि निश्चित ही कोई पुरातन पुण्य स्थली है, जो श्रीराम के चरणकमलों के संस्पर्श से पवित्र है, जिसकी देवगण भी वन्दना करते हैं। श्रीवैष्णवजन निरन्तर ही जहाँ विराजमान रहकर ईश्वर आराधना में तल्लीन रहते हैं। उस मन्दिर को सादर प्रणाम है।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सन्ततं चिन्तनं यस्य नौमि सङ्कर्षणञ्च तम्॥ १९३॥

अर्थ - यहां (इस जगत में) सभी सुखी हों, सभी निरोग हों ऐसा जिनका चिन्तन है उन राजगुरु स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी महाराज को प्रणाम करता हूँ।

मन्दिरं वेङ्कटेशस्य भूश्रियोः समलङ्कृतम्।
हनुमद्धारतीरे तु स्थापितं भाति सुन्दरम्॥ १९४॥

अर्थ - राजगुरु स्वामीसंकर्षणाचार्य जी द्वारा निर्मापित श्रीवेंकटेश मन्दिर जो हनुमानधारा (चित्रकूट) की उपत्यका में स्थापित है, वह अत्यन्त रमणीय है।

सप्तवाणोत्तरे चैतद् विंशके विक्रमे शुभे।
स्वामिसङ्कर्षणाचार्यैः स्थापितं भव्यमन्दिरम्॥ १९५॥

अर्थ - उस श्रीवेंकटेश मन्दिर की स्थापना संवत् २०५७ में की गयी है, जो स्वरुपतः अत्यन्त भव्य एवं दिव्य है।

श्रीदेवी भूदेवी च राजेते यस्य पार्श्वतः।
मन्दिरे राजमानं तं वेङ्कटेशं नमाम्यहम्॥ १९६॥

अर्थ - जिस वेंकटेश मन्दिर में भगवान् श्रीवेंकटेश जी श्रीदेवी एवं भूदेवी जी से पार्श्वतः समलंकृत हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

हरिद्वारे च गङ्गायाः प्रतीचीकूलभूतले।
हरिद्वार-ऋषिकेशराजमार्गे तथैव च ॥ १९७॥
मन्दिरं नूतनं भव्यं वेङ्कटेशविभावितम्।
शङ्करं कारयामास स्वामिसङ्कर्षणो मुनिः ॥ १९८॥

अर्थ - मन्दिर निर्माण की इस श्रृंखला में हरिद्वार (उत्तरांचल) में गंगा जी के पश्चिमी तट में हरिद्वार-ऋषिकेश राजमार्ग में लोक का कल्याण करने वाला अत्यन्त भव्य एवं नूतन मन्दिर का निर्माण स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी महाराज ने करवाया है।

भाति षष्ट्युत्तरे विंशके विक्रमे,
शुक्रमासे तथा शुक्लपूर्णातिथौ।
वेङ्कटेशो विभू राजते स्थापित:,
श्रीमहालक्ष्मिसंसेवित: सन्ततम् ॥ १९९ ॥

अर्थ - उक्त मन्दिर में संवत् २०६० ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा तिथि में सपरिकर श्रीदेवी एवं श्रीभूदेवी से समाराधित श्रीवेंकटेशभगवान् की प्राण प्रतिष्ठा की गयी है।

भक्त्या तुष्यते रामो भक्त्या रामानुजो मुनि:।
लोक: पुष्यते भक्त्या तेन भक्तिं समाश्रयेत् ॥ २०० ॥

अर्थ - प्रभु श्रीराम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के प्रवर्तक आद्यजगद्गुरु रामानुजाचार्यजी की प्रसन्नता एवं कृपा का हेतु भी भक्ति ही है। इतना ही नहीं संसार मात्र भक्ति अर्थात् निष्कामसेवा से ही प्रसन्न एवं पुष्ट होता है। अत: प्राणिमात्र को भक्ति का समाश्रयण करना चाहिए ।

कलिकालविषज्वालात्रासनिर्णासहेतवे।
भक्तिरेव परो मार्गस्तेन भक्त्या हरिं भजेत् ॥ २०१ ॥

अर्थ - कलिकाल की विषज्वाला से परित्राण प्राप्त करने के लिए भक्ति ही मुख्य मार्ग है अत: प्राणिमात्र भक्ति का अवलम्बन लेकर श्रीहरि की उपासना करे।

भक्तो भक्त्या हरिप्रीतो भक्तिर्मुक्तिप्रदायिनी।
मोक्षहेतुस्तथा भक्तिस्तेन भक्त्यै नमो नम: ॥ २०२ ॥

अर्थ - भक्त, भक्ति द्वारा ही श्रीहरि का प्रिय बनता है। भक्ति ही मुक्ति की प्रदायिनी है। वह मोक्ष का हेतु भी है। अत: भक्ति को नमस्कार है। नमस्कार है।

मुनीन्द्रवृन्दवन्दिता हरीन्द्रवृन्दसेविता।
सुरेन्द्रभावभाविता पुनातु भक्तिरच्युता॥ २०३॥

अर्थ - श्रेष्ठ मुनिजनों द्वारा जो वन्दित है, श्रीहनुमान् आदि हरीन्द्रों से जो सेवित है तथा इन्द्र द्वारा जो समाराधित है वह उत्कर्षशालिनी भक्ति माँ मुझे पवित्र करे।

मनोऽभिलाषपूरिका सुधीन्द्रहासहेतुका।
चतुर्दिगन्तदीपिका पुनातु भक्तिरच्युता॥ २०४॥

अर्थ - जो मन: कामना को पूर्ण करने वाली है। जो विद्वानों के मधुर हास का हेतु है तथा जो आश्रितों के लिए चतुर्दिक सुदीप्त करती है, वह परमपावन भक्ति मुझे पवित्र करें।

जनाभिरामरामचन्द्रपादपूतचन्द्रिका।
मदादिदोषचण्डिका पुनातु भक्तिरच्युता॥ २०५॥

अर्थ - लोकलोचनाभिराम प्रभु रामकुमार भगवान् के चरणकमलों के स्पर्श से पवित्र चन्द्रिका की भांति आश्रितों को सुख एवं प्रकाश देने वाली मद मोह मत्सर आदि मानसिक शत्रुओं के लिए चण्डिका की भांति प्रचण्ड श्रीभक्ति माँ मुझे पवित्र करें।

सुभुक्तिमुक्तिदायिनी, सुभक्तमेघदामिनी।
त्रितापतापनाशिनी, पुनातु भक्तिरच्युता॥२०६॥

अर्थ - भुक्ति एवं मुक्ति को प्रदान करने वाली, भक्तों के लिए मेघदामिनी की भाँति प्रभु के कृपाकर्षण हेतु आश्वस्त करने वाली, दैहिक, दैविक एवं भौतिक सन्तापों को विनष्ट करने वाली भक्ति माँ मुझे पवित्र करें।

नतात्मनः प्रकाशिका श्रुतिस्मृतिप्रमाणिका।
सदाच्युताङ्घ्रिपद्मयोः पुनातु भक्तिरच्युता॥२०७॥

अर्थ -शरणागत जनों के अन्तःकरण की प्रकाशिका श्रुतियों एवं स्मृतियों की प्रमाणभूता शक्ति तथा श्रीमन्नारायण के चरण कमलों में वास करने वाली श्रीभक्ति माँ मुझ पर सदैव कृपावृष्टि करती हुई पवित्र करें।

श्रीदेवीं भूदेवीञ्च गरुडं विजयं जयम् ।
मन्दिरे राजमानं तं वेङ्कटेशं नमाम्यहम्॥२०८॥

अर्थ -श्रीदेवी जी, श्रीभूदेवी जी, श्रीगरूड़ जी तथा जय एवं विजय के सहित मन्दिर में विराजमान श्रीवेंकटेश भगवान को भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ।

वेङ्कटेशो परं ब्रह्म साक्षान् मन्मथमन्मथः ।
रामो लोकाभिरामाय राजते वेङ्कटाचले॥२०९॥

अर्थ - श्रीवेंकटेश भगवान् साक्षात् परं ब्रह्म हैं तथा सुन्दरता में मन्मथ (कामदेव) को भी मथित करने वाले हैं, वे जन-जन के हृदय में रमण करने वाले श्रीराम हैं, जो लोक को आनंद प्रदान करने के लिए वेंकटाचल पर्वत पर श्रीबाला जी के रूप में विराजते हैं।

रत्नाकरस्तव पदार्पितचित्तवृत्ति-
स्लक्ष्मीस्तथा हि तनुते तव कैङ्करीं नः।
हे वेङ्कटेश ! भवते जगदीश्वराय।
किन्देयमस्तु कृपया भगवन् ! विधेहि॥२१०॥

अर्थ - हे परमात्मन् वेंकटेश ! साक्षात् रत्नाकर ही आपका पादसेवक है। श्रीलक्ष्मीजी आपकी गृहणी हैं, जो सतत सेवा में संलग्न हैं। ऐसी

परिस्थिति में आपके परितोष के लिए संसार की कोई भी बहुमूल्य वस्तु पर्याप्त नहीं हैं । किन्तु मैं आपको कुछ न कुछ देना अवश्य चाहता हूँ। अत: आप ही बतायें, मैं क्या दूँ ?

नाऽहं समर्थो द्रविणार्पणे भोः !
नाऽहञ्च शक्तो मणिराशिदाने।
किन्तु प्रभो स्वीयमनोऽभिरामं,
श्रीपादपद्मेषु समर्पयामि॥२११॥

अर्थ - हे परमात्मन् ! मैं धन अर्पण करने में समर्थ नहीं हूँ, न ही मैं मणिराशि का ही दान कर सकता हूँ। क्योंकि मैं अकिंचन हूँ। किन्तु मैं अपने इस अभिराम मनः पुष्प को आपके चरणों में सौंप रहा हूँ। इससे आप संतुष्ट और प्रसन्न हों।

प्रातः समुत्थाय मुनीन्द्रवृन्दाः
वेदानुघोषेण यमामनन्ति।
भक्तार्तिनाशं हृदयाधिवासं
श्रीवेङ्कटेशं सततं नमामि॥२१२॥

अर्थ - प्रात:काल उठकर मुनिजन तथा श्रोत्रिय वैदिकमन्त्रों का उद्घोष कर जिसकी समर्चना करते हैं, उन भक्तों के कष्टनाशक, हृदयप्रदेश में विचरण करने वाले प्रभु वेंकटेश जी को सतत प्रणाम करता हूँ।

नीलाम्बुजश्यामलदेहकान्तिं,
श्रीभूसमारोपितपार्श्वभागम्।
निष्कामकामारिकृतप्रणामं,
श्रीवेङ्कटेशं सततं नमामि॥२१३॥

अर्थ - नीलकमल की भाँति श्यामल देहकान्ति वाले, पार्श्वस्थ श्रीदेवी एवं भूदेवी से समलंकृत तथा निष्कामभाव से कामदेव के शत्रु भगवान् भूतनाथ शंकरजी द्वारा प्रणमित श्रीवेंकटेश भगवान् को प्रणाम करता हूँ।

भज राममकाममुनीन्द्रनुतं,
हरिगीतमहाचरितं वरदम्।
भवसागरसेतुमहोऽनिरतं,
शरणागतपालकमेकविभुम्॥२१४॥

अर्थ - रे मन! तू उन श्रीराम का भजन कर। जो निष्काम भावना से श्रेष्ठ मुनियों द्वारा नमस्कृत हैं, श्रीहनुमान् जी द्वारा परिगीत हैं, जिनका चरित्र महान् है। जो वरदाता हैं। भवसागर पार होने के लिये सेतु हैं तथा एक मात्र शरणागतों के रक्षक हैं।

मम मनोमकरन्दसमीप्सितौ,
मम वचःपयसापरिसिञ्चितौ ॥
मम विलोचनलोचनवाञ्छितौ,
तव कृपाकर! पादसरोरुहौ॥२१५॥

अर्थ - हे परमात्मन्! मेरे मनोमकरन्द द्वारा आपके ही चरणकमल समीप्सित हैं, मेरी वाणी रूप जल से वह परिसिञ्चित भी हैं तथा मेरी आँखों द्वारा अवलोकनार्थ वाञ्छित भी वही हैं।

यादवो रामकिशनः स्वप्ने लब्धमनोरथः।
चित्रकूटतपोभूमौ रामघाटे मनोरमे॥२१६॥
राम मन्दिरनिर्माणं कृतवान् भवमन्दरम्।
यत्र भाति स्वयं रामो वनवासिस्वरूपधृक्॥२१७॥

अर्थ - आचार्य मन्दिर का अंगभूत वनवासी राममन्दिर जो मानो भवसागर का मंदराचल है उसका निर्माण रामकिशन यादव नामक किसी भक्त ने स्वप्न में प्रेरणा प्राप्त करके चित्रकूट में मन्दाकिनी नदी के किनारे राम घाट में करवाया था जहाँ वनवासी श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण जी का स्थापित तथा प्राणप्रतिष्ठापित श्रीविग्रह अत्यंत देदीप्यमान हो रहा है।

श्रीचित्रकूटे मुनिवर्यकूटे,
मन्दाकिनीवारिपवित्रकूटे।
श्रीस्वामिसङ्कर्षणभावकूटे,
स्तुवे वसन्तं प्रभुरामभद्रम् ॥२१८॥

अर्थ - मैं मुनिपुंगवों की बहुलता वाले, मन्दाकिनीजी के विमल जल से पवित्रीकृत शिखरवाले श्रीचित्रकूटधाम में राजगुरु स्वामी संकर्षणाचार्यजी के भावकूटवासी प्रभु श्रीरामभद्रजी की स्तुति करता हूँ।

जटाजूटवल्लीभिरामोदमानं,
मृदुस्वाननं नीलवर्णं प्रशान्तम्।
मुदं जानकीजीवनं लक्ष्मणेशं,
वनेवासिनं रामचन्द्रं नमामि ॥२१९॥

अर्थ - लम्बी जटाजूटों से आमोदमान स्निग्ध मुख वाले, नीलवर्ण, प्रशान्त श्रीजानकीजी के जीवन तथा श्रीलक्ष्मणजी के स्वामी वनवासी प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूँ।

शुभं चारूमन्दाकिनीलोलगीतं,
तथा कामतानाथसङ्गीतकीर्तिम्।
शरण्यं वरेण्यं महारण्यनीतं,
वनेवासिनं रामचन्द्रं नमामि ॥२२०॥

अर्थ -जो सर्वदा शुभकारी हैं तथा मन्दाकिनी की चंचल लहरों से परिगीत हैं श्रीकामतानाथ जी प्रणतजनों की कामनापूर्ति करके जिनके कीर्ति का बखान

करते हैं। जो शरणागतपालक हैं तथा जो अरण्यवास हेतु श्रीचित्रकूटधाम पधारे हैं। उन श्रीवनवासीरामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ।

खरारिं मुरारिंतथा ताटकारिं,
मुनीशञ्च मानं महापूरुषस्य।
धनुर्धारिणं कोलभिल्लादिगीतं,
वनेवासिनं रामचन्द्रं नमामि॥२२१॥

अर्थ -जो खरदूषण, मुर एवं तारका के शत्रु हैं, जो विमानी है किन्तु महापुरूषों के मानक हैं, जो धनुर्धारी हैं एवं वन में निवास करने वाले कोल, भिल्ल आदि जनजातियों से भूरिश: परिगीत हैं, उन वनवासी श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम है।

चिदानन्दमूर्तिं प्रभुं रामभद्रं,
विभुं शाश्वतं कामदं मेघनीलम्।
हरि भास्वरं भास्करं पीतवस्त्रं,
वनेवासिनं रामचन्द्रं नमामि॥२२२॥

अर्थ - चित् एवं आनन्द की मूर्ति, सर्वत्र व्याप्त, त्रिकाल सत्य, कामनाओं को पूर्ण करने वाले मेघ की भाँति साँवले, कष्टहर्ता, भास्वरकान्तिवान्, सूर्यवंशी एवं पीताम्बरधारी हैं, उन वनवासी प्रभु रामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूँ।

तपोधूतपापैः सदा गीतरामै-
र्मुनीन्द्रैः सुधीन्द्रैस्तथा पक्षिवृन्दैः।
तुलस्याश्च दासेन जेगीय्यमानं
वनेवासिनं रामचन्द्रं नमामि॥२२३॥

अर्थ - जिनका तपस्या करने से पाप धुल गया है, ऐसे निष्कलुष श्रेष्ठ मुनियों

एवं विद्वानों द्वारा तथा वन में बहुलतया सुलभ पक्षिवृन्दों द्वारा श्रीसीता लक्षमण विशिष्ट श्रीरामकुमार भगवान के चरणानुरागी स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी द्वारा अथवा ग्रन्थकर्ता श्रीतुलसीदास द्वारा सदा जेगीयमान श्रीवनवासी भगवान् प्रभु रामचन्द्र को प्रणाम करता हूँ।

शुभे मालपानीकुले लब्धजन्मा,
प्रसादो हरेर्मालपानीति तुष्ट्यै।
गुरोराश्रमं जानकीपुष्टये च,
वनेवासिनोऽकारयद् भाति भव्यम् ॥२२४॥

अर्थ - मालपानी वंश में जन्म धारण करने वाले श्रीहरिप्रसाद मालपानी जी ने अपने गुरुदेव श्री राजगुरु स्वामीसंकर्षणाचार्यजी की प्रसन्नता एवं अपनी माँ जानकी देवी की पुष्टि हेतु जिस श्री वनवासी राममन्दिर में एक विशिष्ट आश्रम का निर्माण करवाया है वह बहुत ही भव्य है।

समापन्ने च वार्धक्ये धर्मरक्षणहेतवे।
अथोत्तराधिकारश्च कस्मै देयो व्यचारयत् ॥२२५॥

अर्थ - काल की अमोघ एवं अव्याहत गति के फलस्वरूप शरीर में वार्धक्य की अनुभूति होने पर धर्मरक्षण तथा धर्मसेवनार्थ राजगुरु का गुरुतर दायित्व किसे दिया जाय ? ऐसा चिन्तन स्वामी श्रीसंकर्षणाचार्यजी ने किया।

दृष्ट्वा शीलगुणोपेतं कञ्चिद् गर्गकुलोद्भवम्।
भूरेलालसुतं विष्णोर्भक्तं सचिनमाह्वयत् ॥२२६॥

अर्थ - चिन्तन मनन एवं अन्वेषण के फलस्वरूप गर्गगोत्र में गृहीतजन्मा श्रीभूरेलाल गर्ग जी के कनिष्ठ पुत्र सचिनकुमार गर्ग; जिस पर बाल्य काल से नारायण भक्ति, के संस्कार थे, उसे बुलाया।

उपवीतं च गायत्रीं शरणागतिमतः परम्।
वेदवेदान्तशास्त्राणामुपदेशमकारयत्॥२२७॥

अर्थ - राजगुरु परम्परा का सफल एवं कुशल निर्वहण की योग्यता का आंकलन करके उस बालक का यज्ञोपवीत संस्कार तथा श्रीनारायणशरणागति आदि प्रदान करके वेदों, वेदांगों, पुराणों तथा वेदान्तादि विशिष्टाद्वैतपोषक दर्शनशास्त्रों का उपदेश किया।

शान्तं सर्वगुणोपेतं दृष्ट्वा नारायणे मतिम्।
श्रीवैष्णवमहामन्त्रमष्टाक्षरमदान्मुनिः॥२२८॥

अर्थ - इस बालक को परमशान्त, सर्वगुणोपेत तथा नारायण में समर्पितचित्त वाला जानकर, उसे श्रीवैष्णव महामन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का उपदेश किया।

स्वामिबदरीप्रपन्नाचार्य इत्याख्यबोधनम्।
सचिनं कारयामास शरणागतिमन्त्रकम्॥२२९॥

अर्थ - उस सचिन कुमार गर्ग को विरक्ति दीक्षा देने के उपरान्त उसका विरक्त आश्रमोचित नाम स्वामी बदरी प्रपन्नाचार्य रखा।

कामदं हनुमद्धारां चित्रकूटविहारिणम्।
नामं नामं प्रपन्नोऽयं गुरोरारभतस्तवम्॥२३०॥

अर्थ - संस्कारानुकूल दीक्षा प्राप्त करके पुलकितान्तःकरण बदरीप्रपन्नाचार्य जी ने श्रीकामदानाथ जी को, श्रीहनुमान् जी को तथा श्रीचित्रकूट बिहारी प्रभु रामकुमार भगवान् को बारंबार प्रणाम करके अपने गुरुदेव का स्तवन प्रारम्भ किया।

संसाराब्धिसमुत्तितीर्षुतरणिं श्रीस्वामिसङ्कर्षणं,
कायक्लेशमलापहं जनमनोग्रन्थप्रभेदक्षमम्।
नित्यं रामरसायनं हरिकथाव्याजेन संसारिणां,
भक्त्या तोषितमाधवं गुरूवरं सम्पाययन्तं भजे॥२३१॥

अर्थ - संसाररूपी सागर को पार करने के इच्छुक प्राणियों के लिए जो नौकाभूत हैं, जो अमृततत्व से परिपूर्ण हैं, मन एवं शरीर के क्लेशादि को विनष्ट करने वाले हैं, शरणागतजनों के संशयग्रन्थि के प्रभेद मे क्षम हैं। श्रीमद्भागवत आदि के कथा व्याख्यान के व्याज से नित्यमेव संसारियों को रामरसायन पिलाते रहते हैं तथा जिन्होने भक्तिभाव के प्राबल्य से श्रीरामकुमार भगवान् को प्रसन्न किया है उन गुरुदेव राजगुरु स्वामी संकर्षणाचार्यजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

यस्य ज्ञानसुदीपितन्नु विमलं स्मेराननं सन्ततं,
सारल्यं चरिते च मङ्गलवचो जिह्वासनस्थं शुचि।
द्वान्द्वानां विलयः स्फुटं नयनयोर्नामामृतञ्चानने
भक्तिज्ञानविरागपूतहृदयं तन्नौमि सङ्कर्षणम् ॥२३२॥

अर्थ - जिनका कमनीय मुख ज्ञानदीप्ति से सुदीप्त हो रहा है, जिनका स्वभाव विमल है, चरित्र सरल है तथा जिह्वा में सतत पवित्र एवं मंगलकारक वाणी विराजती है, जिनके आँखों में द्वन्द्व का विलय हो चुका है, जिनके मुख में केवल राम नामामृत ही अवस्थित है, ऐसे भक्ति ज्ञान एवं विराग से पूतात्मतत्व वाले पूज्यगुरुदेव स्वामी संकर्षणाचार्यजी को प्रणाम करता हूँ।

यं मत्वा तनयं स्वयं भगवती लक्ष्मीस्तु कारुण्यदा,
ज्ञानं भक्तिरसात्मकञ्च विमलं स्तन्यं मुदाऽपाययत्।
यं विश्वं मनुते स्वयं शुकमुनिप्रीत्यागतं भूतले,
तं भक्त्या प्रणमामि पूज्यचरणं श्रीस्वामिसङ्कर्षणम् ॥२३३॥

अर्थ - जिन्हें परमकरुणामयी भगवती लक्ष्मी अपना पुत्र मानकर ज्ञान एवं भक्तिमय रसात्मक स्तन्य (दुग्ध) पिलाया है। तथा जिन्हें सारा संसार यह कहता एवं मानता है कि साक्षात् शुकदेवजी ही स्वामी संकर्षणाचार्यजी के रूप में अवतरित हैं, ऐसे महान् तपस्वी पूज्यगुरुदेव स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी को प्रणाम करता हूँ।

चित्ते यस्य रमापतेरनुदिनं भक्त्या नरीनर्तनं,
वैराग्यञ्च विभाति यस्य चरणे मोहादिदोषापहम्।
श्रीमद्भागवतीकथाप्रवचनं चर्यागतं यस्य तं,
नौमि ज्ञानविरागमूर्तिममलं श्रीस्वामिसङ्कर्षणम्।।२३४।।

अर्थ - जिनके चित्त में श्रीलक्ष्मीनारायणजी की भक्ति ही सर्वदा नरीनर्तन करती है तथा जिनके आचरण में मोहादि दोषों को नष्ट करने वाला वैराग्य दृष्टिगोचर होता है। इतना ही नहीं श्रीमद्भागवत की गम्भीर किन्तु सरस कथा प्रवचन जिनकी सहज दिनचर्या बन चुका है, ऐसे साक्षात् ज्ञान एवं वैराग्य की निष्कलुष मूर्ति स्वामी संकर्षणाचार्यजी को प्रणाम करता हूँ।

सर्वे धर्ममनुव्रजन्तु मनुजा नीरोगवन्तश्च ते
नित्यंज्ञानविरागभक्तिसहितं श्रीरामनामामृतम्।
पीत्वानन्दमया भवन्त्विति सदा संचिन्त्यते येन तं,
श्रीसङ्कर्षणदेशिकं गुरुवरं भक्त्या नमस्कुर्महे।। २३५ ।।

अर्थ - सभी जन धर्म का अनुसरण करें। सभी नीरोग हों तथा ज्ञानी विरागी एवं भक्तिमान् बनकर श्रीरामनामामृत का पान करते हुए आनन्दमय जीवन वाले बनें। इस प्रकार का जिनका महान चिन्तन है। उन गुरुदेव स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्य जी महाराज को प्रणाम करते हैं।

निष्णातं भगवत्कथारससुधापाने महायोगिनं,
वाचा नित्यनवीनभावरसया संजीवयन्तं जनान्।
धीरं शास्त्रविचक्षणं हरिधनं संसेव्यमानं बुधै-
राचार्यप्रवरं नमामि शिरसा श्रीस्वामिसङ्कर्षणम्।। २३६।।

अर्थ - जो भगवत्कथा रसामृत के पान में प्रवीण हैं, जो नितप्रति नवीन-नवीन भावरसों से आप्लावित अपनी रसमयी वाणी से मरणधर्मा लोगों को

संजीवित कर रहे है, जो महायोगी हैं, धीर हैं, शास्त्रज्ञ हैं, श्रीहरि को ही अपना परमधन मानने वाले हैं, आचार्यों में श्रेष्ठ हैं,उन श्री राज गुरुसंकर्षण प्रपन्नाचार्य जी को शिर नमन पूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

ख्यातं वैष्णववृन्दसेवितपदं पूज्यं जगद्विश्रुतं,
लक्ष्मीनाथपदानुरागमहितं श्रुत्यर्थपारङ्गतम् ।
विद्वन्मानभृतं रघूद्वहकथाकल्पद्रुमं देशिकं,
श्रीसङ्कर्षणपूज्यपादमनिशं वन्दे कृपालु गुरुम् ।।२३७।।

अर्थ - लोकमात्र में ख्यात, श्रीवैष्णवों द्वारा पूजित, जगद्विश्रुत श्री लक्ष्मीनाथ जी के चरणानुरागी, श्रुतियों के अर्थावबोधन में पारंगत, विद्वानों द्वारा सम्मानित, श्रीरामकथारूप कल्पवृक्ष के उपासक, परम कृपालु गुरुदेव श्रीराजगुरु स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी की वन्दना करता हूँ।

तापानां शमनी सुधारसमयी गङ्गेव निष्यन्दनी,
राधाकृष्णपदानुरागमहिता श्रुत्या मनोहारिणी ।
स्वच्छन्दं प्रविहारिणी भगवती श्रीशारदायन्मुखाद्,
वन्दे राजगुरुं महामुनिधनं श्रीस्वामिसङ्कर्षणम् ।।२३८।।

अर्थ - त्रितापों का उपशमन करने वाली, सुधारस से परिपूर्ण भागीरथी गंगा की भांति प्रवाहशालिनी, श्रीराधाकृष्णजी के पदानुराग से श्रेष्ठता को प्राप्त हुई तथा सुनने में अत्यन्त प्रिय लगने वाली साक्षात् सरस्वती ही जिनके मुखकमल से निःसृत होकर स्वच्छंद विहारशील होती है। उन महामुनियों के परमधन पूज्यगुरुदेव राजगुरु स्वामी संकर्षणप्रपन्नाचार्यजी को प्रणाम करता हूँ।

अष्टकं स्वामिवर्याणां श्रीसङ्कर्षणसंज्ञिनाम्।
तुलसीदाससङ्गीतमालयं गीयतां नरैः ॥२३९॥

अर्थ - इस प्रकार श्रीराम, श्रीलक्ष्मण एवं श्रीसीता के चरणों के अनन्य उपासक (तुलसीदासः-तु=तुरीयःरामः,ल=लक्ष्मणः, स=सीता। तासां दासः) द्वारा आठ श्लाकों में रचित श्रीसंकर्षणाचार्याष्टक का परिगायन जनमात्र को जीवनपर्यन्त करना चाहिए। क्योंकि सज्जनों का चरित शान्ति एवं आनंद देता है।

विरक्ता भोगेभ्यः परहितकृतश्रीपरिचयाः,
प्रबुद्धा विख्याता जितषडरिवर्गा हरिधनाः।
महान्तो वक्तारो महति समवाये मुनिवराः
प्रणूयन्ते भक्त्या मम गुरुवराः पूज्यचरणाः ॥२४०॥

अर्थ - सांसारिक भोगों से पूर्णतः विरक्त, निरन्तर दूसरे का परोपकार करने से समाज में सुपरिचित, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर नामक अन्तः शत्रुओं को जीतने वाले, ईश्वर को परमधन मानने वाले, विद्वानों की सभा के कुशल वक्ता तत्वावगन्ता राजगुरु परम्परा के समस्त पूर्वाचार्यों को अत्यन्त भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ।

स्वामीबदरीप्रपन्नस्तु गुरुसेवापुरःसरम्।
कुर्वन् राजते पीठे धर्माचारमकामकम् ॥२४१॥

अर्थ - वर्तमान समय में पूर्वाचार्यों की परम्परा के आदर्शानुरुप तपस्या एवं भक्तिभाव से हरि को प्रसन्न करने के लिए स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्यजी गुरु सेवापुरःसर निष्कामभावना से धर्माचार का अनुपालन करते हुए योगपीठ आचार्य आश्रम में युवराज पद पर सुशोभित हो रहे हैं।

श्रीरामपादाम्बुजचञ्चरीकं,
श्रीकृष्णलीलामृततत्वविज्ञम्।
ज्ञानाब्धिचन्द्रं तपसा प्रशान्तं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि॥२४२॥

अर्थ - श्रीरामकुमार भगवान् के चरणाम्बुजों के भ्रमर, श्रीकृष्णलीलामृततत्व के विद्वान्, ज्ञानाब्धि के इन्दु, तपस्या के आधिक्य से प्रशान्त, श्रीस्वामी बदरी प्रपन्नाचार्यजी को शिर नमनपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

अध्यात्मविद्योदधिसेतुकल्पं,
सन्मार्गपान्थं जितवैरिवर्गम्।
आचार्यपीठाधिपतिं महान्तं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि॥२४३॥

अर्थ - अध्यात्मविद्यारुपी समुद्र में सेतुभूत, सन्मार्ग के पथिक, कामक्रोधादि षड् शत्रुओं को जीतने वाले आचार्यपीठ (श्रीयोगपीठ) के महन्त पद पर आसीन स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी को प्रणाम करता हूँ।

स्वनामधन्यं नरदेवमान्यं,
नारायणे चार्पितचित्तवृत्तिम्।
निरामयं चिन्मयतत्वरूपं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि॥२४४॥

अर्थ - स्वनामधन्य, राजाओं से सम्मानित, श्रीमन्नारायण में अर्पित चित्तवृत्ति वाले, निरामयजीवनशील, चिन्मयतत्वरूप स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी को प्रणाम करता हूँ।

तपस्विनं लोकनुतं मुनीशं,
कौशेयवस्त्रावृतभव्यदेहम्।
सुधीवरं भागवतं गुणज्ञं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि ॥२४५॥

अर्थ - परमतपस्वी, लोकाभिवन्दित, मुनिश्रेष्ठ, कौशेयवस्त्रधारी, विद्वद्वर, परम भागवत एवं गुणज्ञ स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी महाराज को प्रणाम करता हूँ।

विशुद्धचित्तोज्झितपञ्चबाणं,
सिद्धं प्रसिद्धं कविभिः प्रगीतम्।
सद्धर्मनिष्ठं तपसा वरिष्ठं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि ॥२४६॥

अर्थ - विशुद्ध चित्त वाले, कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले, सिद्ध, प्रसिद्ध एवं कवियों द्वारा प्रगीत, सद्धर्मनिष्ठ तपस्या से वरिष्ठ स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी को प्रणाम करता हूँ।

निधाय चित्ते प्रभुवेङ्कटेशं,
हे नाथ ! नारायण ! भाषमाणम्।
प्रेमाश्रुपूर्णं पुलकाङ्गयष्टिं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि ॥२४७॥

अर्थ - अपने अन्तः करण में प्रभु श्रीवेंकटेशजी का ध्यान करके प्रेमातिरेक से हे नाथ ! हे नारायण ! इस प्रकार कहते हुए प्रेमाश्रुपूर्ण तथा पुलकित शरीरवाले स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी महाराज को प्रणाम करता हूँ।

आनन्दसिन्धुं दलितैकबन्धुं,
साक्षात् कृपासिन्धुमुपासमानम्।
उद्धारहेतुं शरणागतानां,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि ॥२४८॥

अर्थ - आनन्द के सिंधु, दलितों शोषितों के बन्धु, साक्षात् कृपासिन्धु श्रीरामजी के समुपासक, शरणागतों के उद्धारक स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी महाराज को प्रणाम करता हूँ।

सद्धर्मशीलं शुचिविप्रवंशं,
स्वतेजसा दीपितलोकमात्रम्।
सङ्गीतकीर्तिं श्रुतशास्त्रपुञ्जं,
बद्रीप्रपन्नं शिरसा नमामि ॥२४९॥

अर्थ - सनातन धर्म के संवाहक, पवित्रविप्रवंश में जन्मे तथा अपने त्याग तपस्या आदि गुणों से लोकमात्र को दीप्त करने वाले, श्रुतिशास्त्रादि के ज्ञाता स्वामी बदरीप्रपन्नाचार्य जी को शिर नमनपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

तुलसीदाससङ्गीतमष्टकं जनतुष्टये।
गायन्तु श्रद्धयोपेता गुरुपादाभिवन्दकाः ॥२५०॥

अर्थ - डॉ. तुलसीदास परौहा द्वारा जनमन तुष्टि हेतु संगीत यह बदरीप्रपन्नाष्टक गुरुपादानुरागी श्रद्धालु जन सतत पढ़ें एवं गायें।

जायन्तामिह भारतेऽनवरतं सत्कर्मशीला जनाः,
भूमिः शस्ययुतास्तु भान्तु सततं सन्तो महामानसाः।
विप्रा वेदमुपासताञ्च मधुरा वाणी जनैर्भाष्यतां,
लोके संस्कृतभारती प्रतिमुखं संस्कुर्वती राजताम् ॥२५१॥

अर्थ - इस भारत वर्ष में लोग सदैव सत्कर्त्तव्यशील हों। पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण हों। सन्तजन निरन्तर सुशोभित हों। विप्रगण वेदों की उपासना करें। लोग सर्वदा मधुर एवं हितकारक बोलें। तथा संस्कृतभारती जन-जन के मुख में विराजमान होकर व्यक्तिमात्र को सुसंस्कृत करती हुई अनन्तकाल तक सुशोभित हो।

तवैवाशिषा पुण्यवृत्तं त्वदीयं,
किमप्यस्मरं लोककल्याणगीतम् ।
इदं तुभ्यमेवार्पये काव्यपुष्पं,
समामन्त्रितं ज्ञैर्मनोभावपूतम् ।।२५२।।

अर्थ - हे महापुरुष ! मैंने आपके ही आशीर्वाद से आपका यह निर्मलचरित लोक कल्याण हेतु गाया है । तथा यह काव्यरूप पुष्प जो बुद्धिमानों, ज्ञानियों एवं सज्जनों द्वारा अभिसम्मित है, आपके ही चरणों में समर्पित है।

कलिकालविषज्वालासन्तप्तैः सुखहेतवे ।
आलयं पीयतां नित्यं सङ्कर्षणचरितामृतम् ।।२५३।।

अर्थ - कलियुगीन विषमतारुप विषज्वाला से सन्तप्त मानवमात्र सुखप्राप्ति हेतु जीवनपर्यन्त इस संकर्षचरितामृतम् का पान करते रहें।

इति पुण्यभूमिभारतवर्षस्य मध्यप्रदेशान्तर्गतकटनीजनपदस्थ - बम्हौरीग्रामवास्तव्यश्रीरामभरोसपरौहात्मजेन डॉ. तुलसीदासपरौहा महोदयेन कृतं सङ्कर्षणचरितामृतम् नाम खण्डकाव्यं

समाप्तम्

परिशिष्टभागः

श्री वैष्णवोपयोगी संक्षिप्त कार्यक्रम

॥ पंच संस्काराः ॥

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
अमी हि पंच संस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥

१. ताप - तप्त शंख चक्रों का धारण ।
२. पुण्ड्र - ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करना ।
३. नाम - भगवत्सम्बन्धी नाम रखना ।
४. मन्त्र - मन्त्र ग्रहण करना ।
५. याग - भगवान् की यथाशक्ति-गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचार से पूजा करना ।

ये पाँच संस्कार श्री वैष्णवों के लिये आवश्यक हैं ।

॥ रहस्य त्रय ॥

मूल मन्त्र - "ॐ नमो नारायणाय"

द्वय मन्त्र - श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये ।
श्रीमते नारायणाय नमः ॥

चरम श्लोक (मन्त्र) -

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

॥ प्रातः स्मरण ॥

श्रीहरिर्हरिः श्री हरिर्हरिः। श्रीहरिशरणम्।

करदर्शनं-

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले च गोविन्दः करोमि करदर्शनम्॥

पृथ्वी की प्रार्थना -

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमंडले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

सप्तपुरी को नमस्कार -

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः॥

चारों धाम को नमस्कार -

श्रीबदरीनारायण, श्रीरामेश्वर,
श्रीजगन्नाथजी, श्रीद्वारिकाधीशजी

द्वादश महाभागवतों के नाम -

स्वयम्भूः नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मः बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

सप्त चिरञ्जीवियों के नाम -

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

गुरू को नमस्कार -

अखंडमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

दैनिक जीवनचर्या की उपयोगी बातें :-

(१) प्रात: काल सूर्योदय के पूर्व "श्री हरि:, श्री हरि:, श्री हरि: इस महामन्त्र का उच्चारण करते हुए उठें, एवं पृथ्वी माता को नमस्कार करें।

(२) गुरु परम्परा श्री आर्चिरादि मार्ग और प्रात: स्तोत्रादि का नित्यानुसन्धान करें।

(३) शौचादि से निवृत्त होकर स्नानकर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण करें एवं प्रात: सन्ध्या करें।

(४) मूलमन्त्र का यथा शक्ति जप करें।

(५) द्वयमन्त्र एवं चरम श्लोक का भी यथा शक्ति जप करें।

(६) भगवान् की यथा शक्ति पूजा करें।

(७) भगवान् को निवेदन करके मौन होकर शान्तभाव से भोजन करें।

(८) श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीवामनद्वादशी, श्री नृसिंह चतुर्दशी का उपवास अवश्य करें।

(९) माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की आज्ञा में रहें।

(१०) यथा शक्ति धार्मिक ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ें व सुनें।

(११) भगवान् की प्रसन्नता के लिये सर्वदा स्वधर्माचरण करें।

ऊर्ध्व पुण्ड्र (तिलक) धारण विधान

"ॐ वीर्याय अस्त्राय फट्"

इस मंत्र से बायें हाँथ की हथेली को धोकर थोड़ा सा जल रखें।

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

इस मंत्र से तिलक पासे को धर कर प्रणव ॐ मंत्र का उच्चारण करते हुये पासे को घिसे। पुनः-

ॐ भगवान् पवित्रं वासुदेवः पवित्रं शतधारं सहस्रधारं परिमित धारमरिष्टमच्छिद्रमच्युतमनन्तमक्ष यमव्ययम्परमं पवित्रं भगवान् वासुदेवः पुनातु॥ "ॐ भगवन्नभीष्टं में देहि"

इन मंत्रों से अभिमंत्रित कर नासिका मूल से ललाट पर्यन्त तीन अथवा चार अंगुल विस्तार वाला ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करें। समय के अभाव से इसी प्रकार द्वादश तिलक धारण न कर सके तो मस्तक पर, पीछे, गले में अवश्य धारण करना चाहिए। द्वादश ऊर्ध्व पुण्ड्र अधोलिखित श्लोकों में कहे प्रमाण अंङ्गो पर तत्-तत् देवताओं का आवाहन कर उक्त स्थानों में केशवादि बारह मंत्रों से धारण करें।

ललाटे केशवंध्याये न्नारायणमथोदरे।
वक्षस्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठकूबरे॥
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ वाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरेषु वामनं वामपार्श्वके॥
श्रीधरं वामवाहौ तू हृषीकेशन्तु कन्धरे।
पृष्ठे न्यसेत्पद्मनाभं त्रिके दामोदरं न्यसेत्॥
तत्प्रक्षालन तोयेन वासुदेवन्तु मूर्द्धनि॥
"ॐ कं केशवाय नमः" इत्यादि १२ मंत्र बोले।

श्रीधारण विधान

श्री चूर्ण को हाथ में लेकर जल के साथ घिसें, उसमें श्री बीज लिख नीचे लिखे मंत्रों से अभिमन्त्रित करें ।

"ॐ ह्रीं क्लीं ॐ महादेव्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात् ॥"

इत्यादि नीचे लिखे द्वादश श्रियों के नाम मंत्रों से द्वादश अंगों में श्री चूर्ण धारण करें।

ॐ श्रियै नम: ॐ अमृतोद्भवायै नम:
ॐ कमलायै नम: ॐ चन्द्रशोभिन्यै नम:
ॐ विष्णुपत्न्यै नम: ॐ वैष्णव्यै नम:
ॐ वरारोहायै नम: ॐ हरिवल्लभायै नम:
ॐ शार्ङ्गिन्यै नम: ॐ देवदैव्यै नम:
ॐ महालक्ष्म्यै नम: ॐ लोकसुन्दर्यै नम:
ॐ सर्वाभीष्टप्रदायै नम: ॥

समाप्तम्

॥ वेङ्कटेशसुप्रभातम् ॥

कौसल्यासुप्रज ! राम ! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नारशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥ १ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥ २ ॥
मातः समस्तजगतां मधुकैटभारेः,
वक्षोविहारिणि मनोहरदिव्यमूर्ते।
श्रीस्वामिनि श्रितजनप्रियदानशीले,
श्रीवेङ्कटेशदयिते तव सुप्रभातम् ॥ ३ ॥
तव सुप्रभातमरविन्दलोचने
भवतु प्रसन्नमुखचन्द्रमण्डले।
विधिशंकरेन्द्रवनिताभिरर्चिते
वृषशैलनाथदयिते दयानिधे ॥ ४ ॥
अत्र्यादिसप्तऋषयस्समुपास्य सन्ध्या-
माकाशसिन्धुकमलानि मनोहराणि।
आदाय पादयुगमर्चयितुं प्रपन्नाः
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥
पञ्चाननाब्जभवषण्मुखवासरवाद्याः
त्रैविक्रमादिचरितं विबुधाः स्तुवन्ति।
भाषापतिः पठति वासशुद्धिमारात्
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥
ईषत्प्रफुल्लसरसीरुहनारिकेल-
पूगद्रुमादिसुमनोहरपालिकानाम्।
आयाति मन्दमनिलः सह दिव्यगन्धैः
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥

उन्मील्य नेत्रयुगमुत्तमपञ्जरस्थाः
पात्रावशिष्टकदलीफलपायसानि
भुक्त्वा सलीलमथ केलिशुकाः पठन्ति
शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

तन्त्रीप्रकर्षमधुरस्वनया विपञ्च्या
गायत्यनन्तचरितं तव नारदोऽपि ।
भाषासमग्रमसकृत्कचारुरम्यं
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ ९ ॥

भृङ्गावली च मकरन्दरसानुविद्ध
झङ्कारगीतनिनदैः सह सेवनाय ।
निर्यात्युपान्तसरसीकमलोदरेभ्यः
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ १० ॥

योषागणेन वरदध्निविमथ्यमाने
घोषालयेषु दधिमन्थनतीव्रघोषाः ।
रोषात्कलिं विदधते ककुभश्च कुम्भाः
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ ११ ॥

पद्मेशमित्रशतपत्रगतालिवर्गाः
हर्तुं श्रियं कुवलयस्य निजाङ्गलक्ष्म्या ।
भेरीनिनादमिव बिभ्रति तीव्रनादं
शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ॥ १२ ॥

श्रीमन्नभीष्टवरदाखिललोकबन्धो
श्रीश्रीनिवास जगदेकदयैकसिन्धो ।
श्रीदेवतागृहभुजान्तरदिव्यमूर्ते
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ १३ ॥

श्रीशेषशैलगरुडाचलवेङ्कटाद्रि
नारायणद्रिवृषभाद्रिवृषाद्रिमुख्याम्।
आख्यां त्वदीयवसतेरनिशं वदन्ति
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १४॥

श्रीस्वामिपुष्करिणि काप्लवनिर्मलाङ्गाः
श्रेयाऽर्थिनो हरविरिञ्चिसनन्दनाद्याः।
द्वारे वसन्ति वरवेत्रहतोत्तमाङ्गाः
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १५॥

सेवापराः शिवसुरेशकृशानुधर्म-
रक्षोम्बुनाथपवमानधनाधिनाथाः।
बद्धाञ्जलिप्रविलसन्निजशीर्षदेशाः
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १६॥

घाटीषु ते विहगराजमृगाधिराज
नागाधिराजगजराजहयाधिराजाः।
स्वस्वाधिकारमहिमाधिकमर्थयन्ते
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १७॥

सूर्येन्दुभौमबुधवाक्पतिकाव्यसौरि-
स्वार्भानुकेतुदिविषत्परिषत्प्रधानाः।
त्वद्दासदासचरमावधिदासदासाः
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १८॥

त्वत्पादधूलिभरितस्फुरितोत्तमाङ्गाः
स्वर्गापवर्गनिरपेक्षनिजान्तरङ्गाः।
कल्पागमाकलनयाकुलतां लभन्ते
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम्॥ १९॥

त्वद्गोपुराग्रशिखराणि निरीक्षमाणाः
स्वर्गापवर्गपदवीं परमां श्रयन्तः ।
मर्त्या मनुष्यभुवने मतिमाश्रयन्ते
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २० ॥
श्री भूमिनायक दयादिगुणामृताब्धे
देवाधिदेव जगदेकशरण्यमूर्ते ।
श्रीमन्ननन्तगरुडादिभिरर्चिताङ्घ्रे
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २१ ॥
श्री पद्मनाभ पुरुषोत्तम वासुदेव
वैकुण्ठमाधव जर्नादन चक्रपाणे ।
श्री वत्सचिह्न शरणागतपारिजात
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २२ ॥
कन्दर्पदर्पहर सुन्दरदिव्यमूर्ते
कान्ताकुचाम्बुरुहकुड्मललोलदृष्टे ।
कल्याणनिर्मलगुणाकर दिव्यकीर्ते
श्रीवेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २३ ॥
मीनाकृते कमललोलनृसिंहवर्णिन्
स्वामिन् परश्वधतपोधन रामचन्द्र ।
शेषांश राम यदुनन्दन कल्किरूप
श्री वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २४ ॥
एलालवङ्गघनसारसुगन्धतीर्थं
दिव्यं वियत्सरसि हेमघटेषु पूर्णम्
धृत्वाद्य वैदिकशिखामणयः प्रहृष्टाः
तिष्ठन्ति वेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २५ ॥
भास्वानुदेति विकचानि सरोरुहाणि

सम्पूरयन्ति निनदैः ककुभो विहङ्गाः ।
श्रीवैष्णवाः सततमर्थितमङ्गलास्ते
धामाश्रयन्ति तव वेङ्कट सुप्रभातम् ॥ २६ ॥
ब्रह्मादयः शिवसुरेशमहर्षयस्ते
सन्तस्सनन्दनमुखास्त्वथ योगिवर्याः ।
धामान्तिके तव हि मङ्गलवस्तुहस्ताः
श्रीवेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २७ ॥
लक्ष्मीनिवास निरवद्यदयैकसिन्धो
संसारसागरसमुत्तरणैकसेतो ।
वेदान्तवेद्यनिजवैभवभक्तभोग्य
श्रीवेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ॥ २८ ॥
इत्थं वृषाचलपतेरिह सुप्रभातम्
ये मानवाः प्रतिदिनं पठितुं प्रवृत्ताः ।
तेषां प्रभातसमये स्मृतिरङ्गभाजां
प्रज्ञां परार्थसुलभां परमां प्रसूते ॥ २९ ॥

समाप्तम्

॥ पञ्चायुधस्तोत्रम् ॥

स्फुरत्सहस्रारशिखातितीव्रं
सुदर्शनं भास्करकोटितुल्यम्।
सुरद्विषा प्राणविनाशि विष्णो-
श्चक्रं सदाऽहं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
विष्णोर्मुखोत्थानिलपूरितस्य
यस्य ध्वनिर्दानवदर्पहन्ता।
तं पाञ्जजन्यं शशिकोटिशुभ्रं
शंखं सदाऽहं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥
हिरण्मयीं मेरुसमानसारां
कौमोदकीं दैत्यकुलैकहन्त्रीम्।
वैंकुण्ठवामाग्रकराभिमृष्टां
गदां सदाऽहं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥
रक्षोऽसुराणां कठिनोग्रकण्ठ-
च्छेदक्षरच्छोणितदुग्धधारम्।
तं नन्दकं नाम हरेः प्रदीप्तं
खड्गं सदाऽहं शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥
यज्ज्यानिनादश्रवणात्सुराणां
चेतांसि निर्मुक्तभयानि सद्यः।
भवन्ति दैत्याशनिबाणवर्षि
शार्ङ्गं सदाऽहं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥
इमं हरेः पञ्चमहायुधानां
स्तवं पठेद्योऽनुदिनं प्रभाते।
समस्तदुःखानि भयानि सद्यः
पापानि नश्यन्ति सुखानि सन्ति ॥ ६ ॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
यदृच्छयापत्सु महाभयेषु।
इदं पठन् स्तोत्रमनाकुलात्मा
सुखी भवेत्तत्कृतसर्वरक्ष: ॥ ७ ॥
भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते च राज्ञो भयं।
विद्यायां कलिभीस्तपे करणभी रूपाद्भयं योषिति।
इष्टे शोकभयं रणे रिपुभयं काये कृतान्ताद्भयं
चेत्थं जन्मनिरर्थक क्षितितले विष्णो: पदं निर्भयम् ॥ ८ ॥

समाप्तम्

।। वरदवल्लभास्तोत्रम् ।।

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतिः शय्याऽऽसनं वाहनं
वेदात्मा विहगेश्वरोयवनिका माया जगन्मोहिनी।
ब्रह्मेशादिसुरव्रजः सदयितस्त्वद्दासदासीगणः श्रीरित्येव
च नाम ते भगवति ब्रूमः कथं त्वां वयम् ।। १ ।।

यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपि प्रभु-
र्नालं मातुमियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।
तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो
लोकैकेश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयां ते विदन् ।। २ ।।

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते
नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं संप्रत्यनन्तोदयम्।
श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनः कान्ताप्रसादादृते
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित् ।। ३ ।।
शान्तानन्तमहाविभूतिपरमं यद् ब्रह्मरूपं हरे-
र्मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि तत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम्।
यान्यन्यानि यथासुखं विहरतोरूपाणि सर्वाणि ता-
न्याहुः स्वैरनुरूपरूपविभवैर्गाढोपगूढानि ते ।। ४ ।।
आकारत्रयसंपन्नामरविन्दनिवासिनीम्।
अशेषजगदीशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम् ।। ५ ।।

समाप्तम्

॥ वेङ्कटेशस्तोत्रम् ॥

कमलाकुचचूचुककुङ्कुमतो
नियतारुणितातुलनीलतनो।
कमलायतलोचन लोकपते
विजयी भव वेङ्कटशैलपते ॥ १ ॥
सचतुर्मुखषण्मुखपञ्चमुख-
प्रमुखाखिलदैवतमौलिमणे।
शरणागतवत्सल सारनिधे
परिपालय मां वृषशैलपते ॥ २ ॥
अतिवेलयतया तव दुर्विषयै:
अनुवेलकृतैरपराधशतै:।
भरितं त्वरितं वृषशैलपते
परया कृपया परिपाहि हरे ॥ ३ ॥
अधिवेङ्कटशैलमुदारमते
जनताभिमताधिकतानरतात्।
परदेवतया कथितान्निगमै:
कमलादयितान्न परं कलये ॥ ४ ॥
कलवेणुरवावशगोपवधू
शतकोटिवृतात् स्मरकोटिसमात्।
प्रतिवल्लविकाभिमतात् सुखदात्
वसुदेवसुतान्न परं कलये ॥ ५ ॥
अभिरामगुणाकर दाशरथे
जगदेकधनुर्धर धीरमते।
रघुनायक राम रमेश विभो
वरदो भव देव दयाजलधे ॥ ६ ॥

अवनीतनयाकमनीयवरं
रजनीकरचारुमुखाम्बुरुहम्।
रजनीचरराजितमोमिहिरं
महनीयमहं रघुराममये ॥ ७ ॥

सुमुखं सुहृदं सुलभं सुखदं
स्वनुजं च सुकायममोघशरम्।
अपहाय रघूद्वहमन्यमहं न
कथञ्चन कंचन जातु भजे ॥ ८ ॥

बिना वेङ्कटेशं न नाथो न नाथः
सदा वेङ्कटेशं स्मरामि स्मरामि।
हरे वेङ्कटेश प्रसीद प्रसीद
प्रियं वेङ्कटेश प्रयच्छ प्रयच्छ ॥ ९ ॥

अहं दूरतस्ते पदाम्भोजयुग्म
प्रणामेच्छयाऽऽगत्य सेवां करोमि।
सुकृत्सेवया नित्यसेवाफलं त्वं
प्रयच्छ प्रयच्छ प्रभो वेङ्कटेश ॥ १० ॥

अज्ञानिना मया दोषानशेषान् विहितान् हरेः।
क्षमस्व त्वं क्षमस्व त्वं शेषशैलशिखामणे ॥ ११ ॥

समाप्तम्

॥ श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसार बन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

श्री वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

श्रीयुधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाऽप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कंकमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

श्रीभीष्म उवाच

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे श्रृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥
यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥
ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद् भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥
स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ २० ॥
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥
ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहःसंवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोनिविनिस्सृतः ॥ २४ ॥
वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥
रुद्रो बहुशिरा बभ्रुः विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥
सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९ ॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३० ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ ३१ ॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥
महेष्वासो महीभर्त्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता संधिमान् स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः ।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥
सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग् विश्वभुग्विभुः ।
सत्कता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥
असंख्ययोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ ४० ॥
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशविंदुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥
भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५ ॥
युगादिकृद् युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्योऽव्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत् कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥
अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ४९ ॥
अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्द्धिऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥५१॥
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः ॥५२॥
विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥५३॥
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥५४॥

सोमपोऽमृतप: सोम: पुरुजित् पुरुसत्तम: ।
विनयो जय: सत्यसन्धो दाशार्ह: सात्वतां पति: ॥६७॥
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रम: ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तक: ॥६८॥
अजो महार्ह: स्वाभाव्यो जितामित्र: प्रमोदन: ।
आनन्दो नन्दनो नन्द: सत्यधर्मा त्रिविक्रम: ॥६९॥
महर्षि: कपिलाचार्य: कृतज्ञो मेदिनीपति: ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्ग: कृतान्तकृत् ॥७०॥
महावराहो गोविन्द: सुषेण: कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधर: ॥७१॥
वेद्य: स्वाङ्गोऽजित: कृष्णो दृढ: संकर्षणोऽच्युत: ।
वरुणो वारुणो वृक्ष: पुष्कराक्षो महामना: ॥७२॥
भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुध: ।
आदित्यो ज्योतिरादित्य: सहिष्णुर्गतिसत्तम: ॥७३॥
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रद: ।
दिविस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिज: ॥७४॥
त्रिसामा सामग: साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छम: शान्तो निष्ठाशान्ति: परायणम् ॥७५॥
शुभाङ्ग: शान्तिद: स्रष्टा कुमुद: कुवलेशय: ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रिय: ॥७६॥
अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिव: ।
श्रीवत्सवक्षा: श्रीवास: श्रीपति: श्रीमतां वर: ॥७७॥
श्रीद:श्रीश: श्रीनिवास: श्रीनिधि: श्रीविभावन: ।
श्रीधर: श्रीकर: श्रेय: श्रीमाँलोकत्रयाश्रय: ॥७८॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टः तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥५५॥
रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥५६॥
वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥५७॥
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥५८॥
विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥५९॥
अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥६०॥
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥६१॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥६२॥
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥६३॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥६४॥
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद् गुरुः ॥६५॥
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद् भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥६६॥

एको नैकः स्तवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम्।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥९१॥
सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥९२॥
अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥९३॥
तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥९४॥
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥९५॥
समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥९६॥
शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥९७॥
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥९८॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥९९॥
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः।
अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥१००॥
सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥१०१॥
सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥१०२॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतान्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥७९॥
उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥८०॥
अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥८१॥
कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥८२॥
कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ॥८३॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥८४॥
महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥८५॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥८६॥
मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥८७॥
सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥८८॥
भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥८९॥
विश्वमूर्ति महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥९०॥

आधारनिलयो धाता पुष्पहास: प्रजागर: ।
ऊर्ध्वग: सत्पथाचार: प्राणद: प्रणव: पण: ॥११५॥
प्रमाणं प्राणनिलय: प्राणभृत्प्राणजीवन: ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिग: ॥११६॥
भूभुर्व: स्वस्तरुस्तार: सविता प्रपितामह: ।
यज्ञोयज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहन: ॥११७॥
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधन: ।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥११८॥
आत्मयोनि: स्वयंजातो वैखान: सामगायन: ।
देवकीनन्दन: स्रष्टा क्षितीश: पापनाशन: ॥११९॥
शंखभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधर: ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य: सर्वप्रहरणायुध: ॥१२०॥
इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मन: ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥१२१॥
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानव: ॥१२२॥
वेदान्तगो ब्राह्मण: स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्ध: स्याच्छूद्र: सुखमवाप्नुयात् ॥१२३॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजा: ॥१२४॥
भक्तिमान् य: सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानस: ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥१२५॥
यश: प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेय: प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२६॥

अणुर्बृहत् कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतःस्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥१०३॥
भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥१०४॥
धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।
अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥१०५॥
सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥१०६॥
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥१०७॥
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥१०८॥
सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत् स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः ॥१०९॥
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥११०॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥१११॥
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥११२॥
अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥११३॥
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमराक्रमः ॥११४॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥१३९॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकेशः।
त्रींल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥१४०॥
इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥१४१॥
विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१४२॥

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामानुशास नके पर्वणि भीष्मयुधिष्ठरसंवादे श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

समाप्तम्

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः ॥१२७॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न: आपदः ॥१२८॥
दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥१२९॥
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥१३०॥
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥१३१॥
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥१३२॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभामतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥१३३॥
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रं खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥१३४॥
ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसाम्।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥१३५॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥१३६॥
सर्वागमनमाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१३७॥
ऋषयः पितरो देवाः महाभूतानि धातवः।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥१३८॥

श्रीभूमिर्विमलादयो नवसुधापद्माधृताः शक्तयो
वेदा वेदवती धराऽपि च महालक्ष्मीः सुकेशालया।
देवी भार्गवभामिनी जनकजा सा रेवती रुक्मिणी
वेदाद्याः प्रभयान्विता दश रमाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥६॥
शत्रुध्वंसि सुदर्शनं सुखकरं श्रीपाञ्चजन्यस्सदा
बाणाः शार्ङ्गममर्षहर्षजनकं कौमोदकी नन्दकः।
सत्पद्मं मुसलं हलं च परशुर्दिव्यायुधानि प्रभोः
सेनाधीशखगेशभोगितयः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥७॥
हंसो धर्मनिदर्शनो हरिमुखो यज्ञश्च धन्वन्तरिः
पाथोऽजो मिथुनोदितो हरिरलङ्कारः पृथिव्याः पृथुः।
आद्यो वेदमुखश्च जन्मनिलयो नारायणो वै विराट्
श्वेतदीपनिवासिजीवहृदयः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥८॥
विष्वक्सेनमुनिर्ह्यनन्तमुनयः श्रीसंप्रदायादिमा
येऽन्ये भूतभविष्यदृश्यसमये श्रीरङ्गभूभूषणाः।
ये वै भागवताः सुखा दशगणा भृत्या नरा वानराः
श्वेतद्वीपनिवासिनोऽमरवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥९॥
इत्युक्तं भवमङ्गलाष्टकमिदं सुश्लोकसंकीर्तनं
श्रीमद्भागवतप्रसादजनकं श्रीवेङ्कटेशेन यत्।
भक्ता ये प्रपठन्ति शुद्धमनसः प्रोत्फुल्लहृत्पङ्कजा-
स्तेषां वाञ्छितमङ्गलं प्रकुरुते भक्तिप्रियो माधवः ॥१०॥

समाप्तम्

॥ भवमङ्गलाष्टकम् ॥

श्रीरङ्गं करिशैलमञ्जनगिरिं शेषाद्रिसिंहाचलं
श्रीकूर्मं पुरुषोत्तमं च बदरीनारायणं नैमिषम्।
श्रीमद्द्वारवतीप्रयागमथुराऽयोध्यागयापुष्करं
सालग्रामगिरिं निषेव्य रमते रामानुजोऽयं मुनिः ॥१॥
सर्वेषां कृतिनां चरन्ति गुरवः कैङ्कर्यनिष्ठा हरेः
श्रीरामानुजयोगिनायकमणिः श्रीपादपद्मालयाः।
भोग्याष्टाक्षरमन्त्ररत्नचरमश्लोकानुसन्धायिनो
वन्द्या भागवतोत्तमाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥२॥
स श्रीमान् परमः पुमानथ चतुर्व्यूहावतारस्ततो
जाता व्यूहपरम्पराः सुरचिताः श्रीकेशवाद्याः पराः।
एकाम्भोनिधिशेषभागशयनन्यग्रोधपत्राश्रय-
क्षीरोदन्वननन्ततल्पसुखदाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥३॥
श्रीरामानुजयोगिपूर्णयमुनावास्तव्यमालाधराः
नाथः कारितनूजसैन्यपरमाः श्रीमांश्च नारायणः।
चण्डाद्याः कुमुदादयः परिजना नित्याश्च मुक्ताश्च ये
श्रीवैकुण्ठनिवासिनोऽमरवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥४॥
मत्स्यः कूर्मवराहमानवहरिः श्रीवामनो भार्गवः
श्रीरामो बलदेवदेवकिसुतौ कल्किर्दशैते क्रमात्।
अन्तर्याम्यथ योगिनां हृदयगोऽप्यर्चावताराः शुभाः
श्रीरङ्गादिसमस्तधामनिलयाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥५॥

तेनैतेन न विस्मयेमहि जगन्नाथोऽपि नारायणो
धन्यं मन्यत ईक्षणात्तव यतः स्वात्मानमात्मेश्वरः ॥६॥
ऐश्वर्यं यदशेषपुंसि यदिदं सौन्दर्यलावण्ययोः
रूपं यच्च हि मङ्गलं किमपि यल्लोके सदित्युच्यते।
तत्सर्वं त्वधीनमेव हि यतः श्रीरित्यभेदेन वा
यद्वा श्रीमदितीदृशेन वचसा देवि प्रथामश्नुते ॥७॥
देवि त्वन्महिमावधिर्न हरिणा नापि त्वया ज्ञायते
यद्यप्येवमथापि नैव युवयोः सर्वज्ञता हीयते।
यन्नास्त्येव तदज्ञतामनुगुणां सर्वज्ञताया विदु-
र्व्योमाम्भोजमिदन्तया खलु विदन् भ्रान्तोऽयमित्युच्यते॥८॥
लोके वनस्पतिबृहस्पतितारतम्यं
यस्याः कटाक्षपरिणाममुदाहरन्ति।
सा भारती भगवती तु यदीयदासी
तां देवदेवमहिषीं श्रियमाश्रयामः ॥९॥
यस्याः कटाक्षमृदुवीक्षणदीक्षितेन
सद्यस्समुल्लसितपल्लव मुल्ललास।
विश्वं विपर्ययसमुत्थविपर्ययं प्राक्
तां देवदेवमहिषीं श्रियमाश्रयामः ॥१०॥

समाप्तम्

॥ श्रीस्तवः ॥

स्वस्ति श्रीर्दिशतादशेषजगतां सर्गोपसर्गस्थितीः
स्वर्गं दुर्गतिमापवर्गिकपदं सर्वं च कुर्वन् हरिः ।
यस्या वीक्ष्य मुखं तदिङ्गितपराधीनो विधत्तेऽखिलं
क्रीडेयं खलु नान्यथाऽस्य रसदा स्यादैक रस्यात्तया ॥१॥
हे श्रीर्देवि समस्तलोकजननीं त्वां स्तोतुमीहामहे
युक्तां भावय भारतीं प्रगुणय प्रेमप्रधानां धियम् ।
भक्तिं वर्धय नन्दयाश्रितमिमं दासं जनं तावकं
लक्ष्यं लक्ष्मि कटाक्षवीचिविसृतेस्ते स्याम चामी वयम् ॥२॥
स्तोत्रं नाम किमामनन्ति कवयोयद्यन्यदीयान् गुणान्
अन्यत्र त्वसतोऽधिरोप्य भणितिः सा तर्हिवन्ध्या त्वयि ।
सम्यक्सत्यगुणाभिवर्णनमथो ब्रूयुः कथं तादृशी
वाग्वाचस्पतिनाऽपि शक्यरचना त्वसद्गुणार्णोनिधौ ॥३॥
ये वाचां मनसां च दुर्ग्रहतया ख्याता गुणास्तावकाः
तानेव प्रति साम्बुजिह्वमुदिता यन्मामिका भारती ।
हास्यं तत्तु न मन्महे नहि चकोर्येकाऽखिलां चन्द्रिका
नालं पातुमिति प्रगृह्यरसनामासीत सत्यां तृषि ॥४॥
क्षोदीयानपि दुष्टबुद्धिरपि निःस्नेहोऽप्यनीहोऽपि ते
कीर्तिं देवि लिहन्नहं न च विभेम्यज्ञो न जिह्रेमि च ।
दुष्येत्सा तु न तावता नहि शुनालीढाऽपि भागीरथी
दुष्येच्छ्वापि न लज्जते न च विभेत्यर्तिस्तु शाम्येच्छुनः ॥५॥
ऐश्वर्यं महदेव वाऽल्पमथ वां दृश्येत पुंसां हि यत्
तल्लक्ष्म्याः समुदीक्षणात्तव यतः सार्वत्रिकं वर्तते ।

आद्यस्य नः कुलपतेर्बकुलाभिरामं
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ॥८॥
यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्
अस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति।
स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्
पादारविन्दमरविन्दविलोचनस्य ॥९॥
तत्त्वेन यस्य महिमार्णवशीकराणुः
शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः।
कर्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय
मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय ॥१०॥
यद्वा श्रमावधि यथामति वाऽप्यशक्तः
स्तौम्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः।
वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः
को मज्जतोरणुकुलाचलयोर्विशेषः ॥११॥
किं चैष शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः
स्तोताऽपि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण।
तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धे-
रित्युद्यमोऽयमुचितो मम चाब्जनेत्र ॥१२॥
नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमूनि
नालं प्रभो भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः।
एवं निसर्गसुहृदि त्वयि सर्वजन्तोः
स्वामिन्नचित्रमिदमाश्रितवत्सलत्वम् ॥१३॥
स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वं
नारायणे त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः।

॥ श्रीआलवन्दारस्तोत्रम् ॥

स्वादयन्निह सर्वेषां त्रय्यन्तार्थं सुदुर्ग्रहम् ।
स्तोत्रयामास योगीन्द्रस्तं वन्दे यामुनाह्वयम् ॥१॥
नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमो नमः ।
नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमो नमः ॥२॥
नमो यामुनपादाब्जरेणुभिः पावितात्मने ।
विदिताखिलवेद्याय गुरवे विदितात्मने ॥३॥
नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्टज्ञानवैरागयराशये ।
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे ॥४॥
तस्मै नमो मधुजिदङ्घ्रिसरोजतत्त्व-
ज्ञानानुरागमहिमातिशयान्तसीम्ने ।
नाथाय नाथमुनयेऽत्र परत्र चापि
नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम् ॥५॥
भूयो नमोऽपरिमिताच्युत भक्तितत्त्व-
ज्ञानामृताब्धिपरिवाहशुभैर्वचोभिः ।
लोकेऽवतीर्णपरमार्थसमग्रभक्ति-
योगाय नाथमुनये यमिनां वराय ॥६॥
तत्त्वेन यश्चिदचिदीश्वरतत्स्वभाव-
भोगापवर्गतदुपायगतीरुदारः ।
सन्दर्शयन्निरमिमीत पुराणरत्नं
तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय ॥७॥
माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।

गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं
परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ॥२०॥
वशा वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-
र्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः
समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः ॥२१॥
उपर्युपर्य्यब्ज भुवोऽपि पूरुषान्
प्रकल्प्य ते ये शतमित्युनुक्रमात् ।
गिरस्त्वदेकैकगुणावधीप्सया
सदा स्थिता नोद्यमतोऽतिशेरते ॥२२॥
त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति-
प्रणाशसंसारविमोचनादयः ।
भवन्ति लीलाविधयश्च वैदिका-
स्त्वदीयगम्भीरमनोनुसारिणः ॥२३॥
नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे ॥२४॥
न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे ।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥२५॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि ।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ॥२६॥

ब्रह्मा शिवः शतमखः परमस्वराडि-
त्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुषस्ते ॥१४॥
कः श्रीः श्रियः परमसत्त्वसमाश्रयः कः
कः पुण्डरीकनयनः पुरुषोत्तमः कः।
कस्यायुतायुतशतैककलांशकांशे
विश्वं विचित्रचिदचित्प्रविभागवृत्तम् ॥१५॥
वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडा
द्यापद्विमोचनमहिष्ठफलप्रदानैः।
कोऽन्यः प्रजापशुपती परिपाति कस्य
पादोदकेन स शिवः स्वशिरोधृतेन ॥१६॥
कस्योदरे हरविरिञ्चमुखः प्रपञ्चः
को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभेः।
क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्गिरति त्वदन्यः
कः केन चैष परवानिति शक्यशङ्कः ॥१७॥
त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-
सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः।
प्रख्यातदैव परमार्थविदां मतैश्च
नैवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ॥१८॥
उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि
संभावनं तव परिब्रढिमस्वभावम्।
मायाबलेन भवताऽपि निगूह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः ॥१९॥
यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्-
दशोत्तराण्यावरणानि यानि च।

धनं मदीयं तव पादपङ्कजं
कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ॥३३॥
कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं
मदीयमूर्द्धानमलङ्करिष्यति ॥३४॥
विराजमानोज्जवलपीतवाससं
स्मितातसीसूनसमामलच्छविम्।
निमग्ननाभिं तनुमध्यमुल्लस-
द्विशालवक्षः स्थलशोभिलक्षणम् ॥३५॥
चकासतं ज्याकिणकर्कशैः शुभै-
श्चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैः।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषण-
श्लथालकाबन्धविमर्दशंसिभिः ॥३६॥
उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डला-
लकावलीबन्धुरकम्बुकन्धरम्।
मुखश्रिया न्यक्कृतपूर्णनिर्मला
मृतांशुबिम्बाम्बुरुहोज्जलश्रियम् ॥३७॥
प्रबुद्धमुग्धाम्बुजचारुलोचनं
सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम्।
शुचिस्मितं कोमलगण्डमुन्नसं
ललाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ॥३८॥
स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिका-
मणीन्द्रकाञ्चीगुणनूपुरादिभिः।
रथाङ्गशङ्खासिगदाधनुर्वरै-
र्लसत्तुलस्या वनमालयोज्जवलम् ॥३९॥

निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः ।
त्वयाऽपि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः ॥२७॥
अभूतपूर्वं मम भावि किं वा
सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् ।
किं तु त्वदग्रे शरणागतानां
पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः ॥२८॥
निरासकस्यापि न तावदुत्सहे
महेश हातुं तव पादपङ्कजम् ।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनन्धयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति ॥२९॥
तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति ।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते ॥३०॥
त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदाऽपि केनचिद्-
यथा तथा वाऽपि सकृत्कृतोऽञ्जलिः ।
तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः
शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ॥३१॥
उदीर्णसंसारदवाशुशुक्षणिं
क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्वृतिम् ।
प्रयच्छति त्वच्चरणारुणाम्बुज-
द्वयानुरागामृतसिन्धुशीकरः ॥३२॥
विलासविक्रान्तपरावरालयं
नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम् ।

न मृषा परमार्थमेव मे
श्रृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।
यदि मे न दयिष्यसे ततो
दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः ।।५३।।
तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन्पालय मा स्मजीहपः ।।५४।।
वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथातथाविधः ।
तदयं तव पादपद्मयो-
रहमद्यैव मया समर्पितः ।।५५।।
मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं
सकलं तद्धि तवैव माधव ।
नियतस्वमिति प्रबुद्धधी-
रथवा किंनु समर्पयामि ते ।।५६।।
अवबोधितवानिमां यथा
मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्यभोग्यतां
भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे ।।५७।।
तव दास्यसुखैकसङ्गिनां
भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मा स्म भू-
दपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।५८।।
सकृत् त्वदाकारविलोकनाशया
तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।

न मृषा परमार्थमेव मे
श्रृणु विज्ञापनमेकमग्रतः ।
यदि मे न दयिष्यसे ततो
दयनीययस्तव नाथ दुर्लभः ॥५३॥
तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च ।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन्पालय मा स्मजीहपः ॥५४॥
वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथातथाविधः ।
तदयं तव पादपद्मयो-
रहमद्यैव मया समर्पितः ॥५५॥
मम नाथ यदस्ति योऽस्म्यहं
सकलं तद्धि तवैव माधव ।
नियतस्वमिति प्रबुद्धधी-
रथवा किंनु समर्पयामि ते ॥५६॥
अवबोधितवानिमां यथा
मयि नित्यां भवदीयतां स्वयम् ।
कृपयैवमनन्यभोग्यतां
भगवन् भक्तिमपि प्रयच्छ मे ॥५७॥
तव दास्यसुखैकसङ्गिनां
भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मा स्म भू-
दपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ॥५८॥
सकृत् त्वदाकारविलोकनाशया
तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।

चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं
तव प्रियं धाम यदीयजन्मभूः।
जगत्समस्तं यदपाङ्गसंश्रयं
यदर्थमम्भोधिरमन्थ्यबन्धि च ॥४०॥
स्ववैश्वरूप्येण सदाऽनुभूतया-
प्यपूर्ववद्विस्मयमादधानया।
गुणेन रूपेण विलासचेष्टितैः
सदा तवैवोचितया तव श्रिया ॥४१॥
तया सहासीनमनन्तभोगिनि
प्रकृष्टविज्ञानबलैकधामनि।
फणामणिव्रातमयूखमण्डल-
प्रकाशमानोदर दिव्यधामनि ॥४२॥
निवासशय्यासनपादुकांशुको-
पधानवर्षातपवारणादिभिः।
शरीरभेदैस्तव शेषतां गतै-
र्यथोचितं शेष इतीरिते जनैः ॥४३॥
दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो
यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः।
उपस्थितं तेन पुरो गरुत्मता
त्वदङ्घ्रिसम्मर्दकिणाङ्कशोभिना ॥४४॥
त्वदीयभक्तोज्झितशेषभोजिना
त्वया निसृष्टात्मभरेण यद्यथा।
प्रियेण सेनापतिना निवेदितं
तथाऽनुजानन्तमुदारवीक्षणैः ॥४५॥
हताऽखिलक्लेशमलः स्वभावतः
त्वदानुकूल्यैकरसैस्तवोचितैः।

रघुवर यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य
प्रणत इति दयालुर्यच्च चैद्यस्य कृष्णः ।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्ध सायुज्यदोभू-
र्वद किमपदमागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः ।।६६।।

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ
तवाहमस्मीति च याचमानः ।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां
मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ।।६७।।

अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्द-
प्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम् ।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य
प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ।।६८।।

यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः ।
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम् ।।६९।।

समाप्तम्

६२. श्रीवैष्णव की इच्छा परम पद में प्रकट हुई थी, यह जानकर श्री वैष्णवों की निरन्तर भलाई करें।

६३. धर्म विरुद्ध महाफल वाले कार्य को भी बुद्धिमान न करें। क्योंकि यह अहितकर होता है।

६४. भगवान को समर्पित किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए।

६५. उपायान्तर से बिना माँगे न मिलने वाली कोई भी वस्तु स्वीकार न करें।

६६. पुष्प, चन्दन, पान, फल, वस्त्र, जल आदि भी भगवान को समर्पित किये बिना ग्रहण न करें।

६७. जाति दुष्ट, निमित्त दुष्ट और आश्रय दुष्ट अन्न भगवान को समर्पित न करें।

६८. अपनी रुचि के लिए अपने को प्रिय पदार्थ ही परमात्मा को भोग न लगावें। अपितु शास्त्रानुसार सभी पदार्थों का भोग भगवान को लगावें।

६९. भगवान को समर्पित अन्न, जल, फल आदि में सदा प्रसाद बुद्धि रखनी चाहिए। भोग बुद्धि कभी भी न रखें।

७०. भागवतापचार ही अपना नाश एवं भगवन्मुखोल्लास ही अपनी उन्नति है।

७१. मंत्रत्रयों (मूल मंत्र, द्वय मंत्र, चरम मंत्र) इन तीनों मन्त्रार्थ में पूर्ण निष्ठा रखने वाले महाभागवतों के शास्त्रीय कर्मों को कैंकर्य बुद्धि में सम्पन्न करें।

७२. भागवतों की पूजा से बढ़कर पुरुषार्थ नहीं और भागवत द्वेष से बढ़कर आत्मनाश नहीं।

गज की टेर सुनी रघुनन्दन, आप पधारे नारायण श्री ।।१२।।
जल डूबत गजराज उबारे, श्री चक्र सुदर्शन धारायण श्री ।।१३।।
सरयू के तीर अयोध्या नगरी, श्रीरामचन्द्र अवतारायण श्री ।।१४।।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, अद्भुत शोभा धारायण श्री ।।१५।।
सरयू के नीरे तीरे तुरंग नचावें, धनुषबाण कर धारायण श्री ।।१६।।
कोमल गात पीताम्बर सोहै, उर वैजयन्ती धारायण श्री ।।१७।।
बकसर जाय ताड़का मारी, मुनि के यज्ञ किये पारायण श्री ।।१८।।
स्पर्शत चरण शिला भई सुन्दर, बैठ विमान भई पारायण श्री ।।१९।।
जाय जनकपुर धनुष उठायो, राजा जनक प्रण सारायण श्री ।।२०।।
जनकस्वयंवर पावन कीन्हौं, वरमाला हरि धारायण श्री ।।२१।।
सीता ब्याह राम घर आये, घरघर मङ्गलाचारायण श्री ।।२२।।
मात पिता की आज्ञा पाई, चित्रकूट पग धारायण श्री ।।२३।।
दण्डकवन प्रभु पावन कीन्हों, ऋषि मुनि त्रास मिटारायण श्री ।।२४।।
सागर ऊपर शिला तराई, कपि दल पार उतारायण श्री ।।२५।।
रावण के दश मस्तक छेदे, राज विभीषण पारायण श्री ।।२६।।
रामरूप होय रावण मारचो, भक्त विभीषण तारायण श्री ।।२७।।
यमुना की नीरे तीरे मथुरा नगरी, श्रीकृष्णचन्द्र अवतारायण श्री ।।२८।।
मथुरा में हरि जनम लियो है, गोकुल में पग धारायण श्री ।।२९।।
बालपने हरि पूतना मारी, जननी की गति पारायण श्री ।।३०।।
बालपने मुखमटिया खाई, तीन लोक दर्शारायण श्री ।।३१।।
मात यशोदा ऊखल बाँधे, यमला अर्जुन तारायण श्री ।।३२।।
मोरमुकुट, पीताम्बर सोहै, श्रवणन कुण्डल धारायण श्री ।।३३।।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावें, मुख पर मुरली धारायण श्री ।।३४।।
पैठ पाताल कालियानाथ्यो, फणपर नृत्य करारायण श्री ।।३५।।
बृन्दावन में रास रच्यो है, सहस्र गोपी एक नारायण श्री ।।३६।।
इन्द्र कोप कियो ब्रज ऊपर, बरसत मूसल धारायण श्री ।।३७।।

३५. ज्ञानी भागवतों एवं मुझ (यतिराज) में समबुद्धि नहीं रखनी चाहिए

३६. यदि भूल से भी प्राकृत लोगों का स्पर्श हो जाय तो वस्त्रों सहित स्नान करके श्रीवैष्णवों का श्री पादतीर्थ ग्रहण करना चाहिए।

३७. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सम्पन्न महात्माओं को नित्य सूरि के समान मानकर उनमें विश्वास करना चाहिए।

३८. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य सम्पन्न श्रीवैष्णव महात्माओं से प्रेम बढ़ाना चाहिए।

३९. प्राकृत लोगों के घरों में स्थित भगवान के विग्रह की सेवा नहीं करनी चाहिए।

४०. प्राकृत लोगों के घर पर भगवान का तीर्थ नहीं लेना चाहिए।

४१. भगवान के दिव्य देशों में दृष्टि दोष नहीं माना जाता।

४२. 'दास ने आज एकादशी व्रत किया है'। ऐसा कहकर भगवान की सन्निधि में भागवतों के द्वारा दिये गये गोष्ठी प्रसाद का त्याग नहीं करना चाहिए।

४३. समस्त पापों को नष्ट करने वाले भगवत् प्रसाद में कभी-भी उच्छिष्ट भावना नहीं लाना चाहिए।

४४. कभी भी वैष्णव के सामने अपनी प्रशंसा न करे।

४५. श्रीवैष्णव की सन्निधि में किसी का तिरस्कार न करें।

४६. श्रीवैष्णव महात्माओं के गुणों का अनुभव तथा उनकी सेवा क्षणभर भी किये बिना कोई कार्य न करें।

४७. दिन में एक घड़ी भी अपने आचार्य के गुणों का अनुसंधान करना चाहिए।

अथ मन्त्रपुष्पाञ्जलिः

हरि ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं-तद् विप्रासो विपन्वयो जाग्रवां सः समिन्धते-विष्णोर्यत् परमं पदम् पर्याप्तानन्तरायाय सर्वस्तोमोति रात्र उत्तममहर्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यजित्यै सर्वमेव तेनाप्नोति, सर्वं जयति हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सुगंधवल्लीशतपत्रजाति, सुवर्णचम्पावकुलोद्भवानि।
गृहाण देवेश मयार्पितानि, प्रभो हरे श्रीतुलसीदलानि ॥

॥ श्रीतुलसी नामार्चनम् ॥

ॐ श्री केशवाय नमः
ॐ श्री नारायणाय नमः
ॐ श्री माधवाय नमः
ॐ श्री गोविन्दाय नमः
ॐ श्री विष्णवे नमः
ॐ श्री मधुसूदनाय नमः
ॐ श्री त्रिविक्रमाय नमः
ॐ श्री वामनाय नमः
ॐ श्री श्रीधराय नमः
ॐ श्री हृषीकेशाय नमः
ॐ श्री पद्मनाभाय नमः
ॐ श्री दामोदराय नमः
ॐ सर्वमंगलविग्रहाय नमः
ॐ समस्तपरिवारविशिष्टाय
श्रीमते नारायणाय नमः
ॐ श्री रामाय नमः
ॐ श्री रामभद्राय नमः
ॐ श्री रामचन्द्राय नमः
ॐ श्री शाश्वताय नमः
ॐ श्री राजीवलोचनाय नमः
ॐ श्रीमते नमः
ॐ श्री राजेन्द्राय नमः
ॐ श्री जानकीवल्लभाय नमः
ॐ श्री जितामित्राय नमः
ॐ श्री जनार्दनाय नमः
ॐ श्री विश्वामित्रप्रियाय नमः
ॐ श्री दान्ताय नमः
ॐ श्री शरणत्राणतत्पराय नमः

१२. श्रीवैष्णव स्वरूपानुष्ठान भगवत् प्राप्ति का उपाय मानकर उपेयरूप समझना।

१३. महाभागवतों को एक वचन में बुलाना चाहिए।

१४. श्रीवैष्णव को देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए।

१५. भगवान् एवं श्रीवैष्णव की सन्निद्धि में पैर फैलाकर न बैठे।

१६. भगवान्, श्रीवैष्णवों एवं गुरुजनों के स्थान की तरफ पैर फैलाकर न सोवें।

१७. प्रात:काल उठकर गुरुपरम्परा का अनुसन्धान करें।

१८. भगवद् सन्निधि में बैठे हुए भागवतों को देखें तथा 'समस्त परिवार विशिष्टाय श्रीमते नारायणाय नम:' कहकर साष्टांग प्रणाम करें।

१९. भगवद् भागवतों का गुणानुवाद करते हुए श्रीवैष्णवों की यथाशक्ति पूजा किये बिना और प्रणाम किये बिना चले जाना महान अपचार है।

२०. श्री वैष्णवों का आगमन सुनकर आगे बढ़कर स्वागत करना और जाते समय कुछ दूर साथ जाकर बहुमान पूर्वक विदा करना चाहिए ऐसा न करने पर अपराध होता है।

२१. आत्मा के उज्जीवन के लिए अपने को श्रीवैष्णवों का शेषभूत मानकर श्रद्धापूर्वक श्रीवैष्णव महात्माओं की आज्ञा का अनुसरण करते हुए शरीर पोषण कीजिए और लोगों के घर-घर भटकना एवं अपने नियमों को छोड़ना यह भी अनाचार है और श्रीवैष्णव स्वरुप के लिए हानिकारक है।

ॐ श्री ब्रह्मण्याय नम:
ॐ श्री मुनिसंस्तुताय नम:
ॐ श्री महायोगिने नम:
ॐ श्री महोदराय नम:
ॐ श्री सुग्रीवेप्सितराज्यदाय नम:
ॐ श्री सर्व पुण्याधिकफलाय नम:
ॐ श्री स्मृतसर्वाघनाशनाय नम:
ॐ श्री आदिपुरुषाय नम:
ॐ श्री परात्पराय नम:
ॐ श्री परेशाय नम:
ॐ श्री महापुरुषाय नम:
ॐ श्री पुण्योदयाय नम:
ॐ श्री पुराणपुरुषोत्तमाय नम:
ॐ श्री स्मितवक्त्राय नम:
ॐ श्री मितभाषिणे नम:
ॐ श्री परमपुरुषाय नम:
ॐ श्री दयासाराय नम:
ॐ श्री राघवाय नम:
ॐ श्री अनन्तगुणगंभीराय नम:
ॐ श्री धीरोदात्तगुणोत्तमाय नम:
ॐ श्री धीरोदात्तमाय नम:
ॐ श्री मायामानुषचारित्राय नम:
ॐ श्री महादेवादिपूजिताय नम:
ॐ श्री सेतुकृते नम:
ॐ श्री जितवाराशये नम:
ॐ श्री सर्वतीर्थमयाय नम:
ॐ श्री हरये नम:
ॐ श्री श्यामाङ्गाय नम:
ॐ श्री सुन्दराय नम:
ॐ श्री शूराय नम:
ॐ श्री पीतवाससे नम:
ॐ श्री धनुर्धराय नम:
ॐ श्री सर्वयज्ञाधिपाय नम:
ॐ श्री यज्वने नम:
ॐ श्री जरामरणवर्जिताय नम:
ॐ श्री विभीषणप्रतिष्ठात्रे नम:
ॐ श्री सर्वांगगुणवर्जिताय नम:
ॐ श्री पारगाय नम:
ॐ श्री परमात्मने नम:
ॐ श्री परब्रह्मणे नम:
ॐ श्री सच्चिदानन्दविग्रहाय नम:
ॐ श्री परंज्योतिषे नम:
ॐ श्री परंधाम्ने नम:
ॐ श्री पराकाशाय नम:
ॐ श्री पाराय नम:
ॐ श्री सर्वदेवात्मकाय नम:
ॐ श्री परस्मै नम:

चेत: सरोवरसरोजसुहंसरुपं,
तं पूजितांघ्रिबलरामगुरुं नमामि ॥ २५ ॥
वेदान्तदेशिकपदाऽम्बुजभृङ्गराजं
गोविन्ददेशिकदयार्णवभूषिताङ्गम् ।
नारायणे कृतमतिं सुधृतिं वरेण्यं
राजार्चितांघ्रिबलरामगुरुं नमामि ॥ २६ ॥
रामानुजार्ययतिवर्यदयैकपत्रं,
संसारसागरसमुत्तरणैकसेतुम् ।
श्रीबलरामस्वामिकरुणारसपूरिताङ्गं,
श्रीसंकर्षणांघ्रिमुनिवर्यमहं भजामि ॥ २७ ॥
श्रीरंगमंगलमहोत्सववर्धनाय,
वेदान्तपन्थपरमार्थसमर्थनाय ।
कैङ्कर्यलक्षणविलक्षणमोक्षभाजो,
रामानुजो विजयते यतिराजराज: ॥ २८ ॥
श्रीरंगमंगलमणिं करुणानिवासं
श्रीवेंकटाद्रिशिखरालयकालमेघम् ।
श्रीहस्तिशैलशिखरोज्वलपारिजातं
श्रीशं नमामि शिरसा यदुशैलदीपम् ॥
जयति जय यतिराज फणिराज अवतारमणे ।
प्रबलपाखण्डतमोहरणभानो
विजयी भव विजयी भव विजयी भव ॥
श्री रामकुमार भगवान् की जय ।
भाष्यकार श्रीरामानुजस्वामी की जय ॥
श्रीस्वामीजी महाराज की जय ॥

समाप्तम्

यक्षकर्दमसंलिप्तसर्वांगे कनकोज्वले ।
मांगल्याभरणे चित्रे मुक्ताहारैर्विभूषिते ।
ताटंकैरवतंशैश्च शोभमानमुखाम्बुजे ।।
पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे ।
ऋग्युज:सामरुपायै विद्यायै ते नमो नमः ।।
प्रसीदस्मान् कृपादृष्टिं पातयालोकदायिनि ।
नृत्यवाद्यादिगीतादिपुराणपठनादिभिः ।
राजोपचारैः सकलैः सन्तुष्टो भव राघव ।
सन्तुष्टो भव माधव ।।

।। इति अष्टोत्तशतनामार्चनम् ।।

समाप्तम्

अस्मदाचार्यपर्यन्तां, वन्देगुरुपरम्पराम् ॥ १५ ॥
यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।
अस्मद् गुरोर्भगवतो सदयैकसिन्धोः
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥
मातापितायुवतयस्तनयाविभूतिः,
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाऽभिरामं,
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ॥ १७ ॥
भूतं सरश्च महदा ह्वयभट्टनाथ-
श्रीभक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान्।
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्,
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ १८ ॥
गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदानशेषान्,
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादातुकामः।
श्वसुरममरवन्द्यं रंगनाथस्य साक्षात्,
द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि ॥ १९ ॥
अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यानशेषान् गुरुन्,
श्रीमल्लक्ष्मणयोगिपुङ्गवमहापूर्णोमुनिं यामुनिम्।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं, नाथं शठद्वेषिणं,
सेनेशं श्रियमिन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये ॥ २० ॥
पाषण्डद्रुमखण्डदावदहनश्चार्वाकशैलाशनिः,
बौद्धध्वान्तनिरासवासरपतिर्जैनेभकण्ठीरवः।
मायावादिभुजंग भंगगरुडस्त्रैवैद्यचूडामणिः,
श्रीरंगेश जयध्वजो विजयते, रामानुजोयं मुनिः ॥ २१ ॥

प्रातः एवं सायंकालीन

॥ भगवान श्री राजकुमारजी की स्तुति ॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥१॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥३॥
लोकाऽभिरामं रणरङ्गधीरं,
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारूण्यरूपं करुणाकरन्तं,
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥४॥
नमामि रामानुजपादपंकजं,
वदामि रामानुजनामर्निमलम्।
स्मरामि रामानुजदिव्यविग्रहं,
करोमि रामानुजदास दासताम् ॥५॥
रामानुजस्य पदपंकजमाश्रयामि,
रामानुजस्य करुणां मनसा दधामि।

प्रात: एवं सायंकालीन

|| भगवान श्री राजकुमारजी की स्तुति ||

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।१।।
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।२।।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।३।।
लोकाऽभिरामं रणरङ्गधीरं,
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारूण्यरूपं करुणाकरन्तं,
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ।।४।।
नमामि रामानुजपादपंकजं,
वदामि रामानुजनामर्निमलम्।
स्मरामि रामानुजदिव्यविग्रहं,
करोमि रामानुजदास दासताम् ।।५।।
रामानुजस्य पदपंकजमाश्रयामि,
रामानुजस्य करुणां मनसा दधामि।

अस्मदाचार्यपर्यन्तां, वन्देगुरुपरम्पराम् ॥ १५ ॥
यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।
अस्मद् गुरोर्भगवतो सदयैकसिन्धोः
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥
मातापितायुवतयस्तनयाविभूतिः,
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाऽभिरामं,
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ॥ १७ ॥
भूतं सरश्च महदा ह्वयभट्टनाथ-
श्रीभक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान्।
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्,
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ १८ ॥
गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदानशेषान्,
नरपतिपरिक्लृप्तं शुल्कमादातुकामः।
श्वसुरममरवन्द्यं रंगनाथस्य साक्षात्,
द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि ॥ १९ ॥
अस्मद्देशिकमस्मदीयपरमाचार्यानशेषान् गुरुन्,
श्रीमल्लक्ष्मणयोगिपुङ्गवमहापूर्णोमुनिं यामुनिम्।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं, नाथं शठद्वेषिणं,
सेनेशं श्रियमिन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये ॥ २० ॥
पाषण्डद्रुमखण्डदावदहनश्चार्वाकशैलाशनिः,
बौद्धध्वान्तनिरासवासरपतिर्जैनेभकण्ठीरवः।
मायावादिभुजंग भंगगरुडस्त्रैवैद्यचूडामणिः,
श्रीरंगेश जयध्वजो विजयते, रामानुजोयं मुनिः ॥ २१ ॥

यक्षकर्दमसंलिप्तसर्वांगे कनकोज्वले।
मांगल्याभरणे चित्रे मुक्ताहारैर्विभूषिते।
ताटंकैरवतंशैश्च शोभमानमुखाम्बुजे॥
पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीद हरिवल्लभे।
ऋग्युज:सामरुपायै विद्यायै ते नमो नम: ॥
प्रसीदस्मान् कृपादृष्टिं पातयालोकदायिनि।
नृत्यवाद्यादिगीतादिपुराणपठनादिभि:।
राजोपचारै: सकलै: सन्तुष्टो भव राघव।

सन्तुष्टो भव माधव॥

॥ इति अष्टोत्तशतनामार्चनम्॥

समाप्तम्

चेत: सरोवरसरोजसुहंसरुपं,
तं पूजितांघ्रिबलरामगुरुं नमामि ॥ २५ ॥
वेदान्तदेशिकपदाऽम्बुजभृङ्गराजं
गोविन्ददेशिकदयार्णवभूषिताङ्गम् ।
नारायणे कृतमतिं सुधृतिं वरेण्यं
राजार्चितांघ्रिबलरामगुरुं नमामि ॥ २६ ॥
रामानुजार्ययतिवर्यदयैकपत्रं,
संसारसागरसमुत्तरणैकसेतुम् ।
श्रीबलरामस्वामिकरुणारसपूरिताङ्गं,
श्रीसंकर्षणांघ्रिमुनिवर्यमहं भजामि ॥ २७ ॥
श्रीरंगमंगलमहोत्सववर्धनाय,
वेदान्तपन्थपरमार्थसमर्थनाय ।
कैङ्कर्यलक्षणविलक्षणमोक्षभाजो,
रामानुजो विजयते यतिराजराज: ॥ २८ ॥
श्रीरंगमंगलमणिं करुणानिवासं
श्रीवेंकटाद्रिशिखरालयकालमेघम् ।
श्रीहस्तिशैलशिखरोज्वलपारिजातं
श्रीशं नमामि शिरसा यदुशैलदीपम् ॥
जयति जय यतिराज फणिराज अवतारमणे ।
प्रबलपाखण्डतमोहरणभानो
विजयी भव विजयी भव विजयी भव ॥
श्री रामकुमार भगवान् की जय ।
भाष्यकार श्रीरामानुजस्वामी की जय ॥
श्रीस्वामीजी महाराज की जय ॥

समाप्तम्

ॐ श्री ब्रह्मण्याय नमः
ॐ श्री मुनिसंस्तुताय नमः
ॐ श्री महायोगिने नमः
ॐ श्री महोदराय नमः
ॐ श्री सुग्रीवेप्सितराज्यदाय नमः
ॐ श्री सर्व पुण्याधिकफलाय नमः
ॐ श्री स्मृतसर्वाघनाशनाय नमः
ॐ श्री आदिपुरुषाय नमः
ॐ श्री परात्पराय नमः
ॐ श्री परेशाय नमः
ॐ श्री महापुरुषाय नमः
ॐ श्री पुण्योदयाय नमः
ॐ श्री पुराणपुरुषोत्तमाय नमः
ॐ श्री स्मितवक्त्राय नमः
ॐ श्री मितभाषिणे नमः
ॐ श्री परमपुरुषाय नमः
ॐ श्री दयासाराय नमः
ॐ श्री राघवाय नमः
ॐ श्री अनन्तगुणगंभीराय नमः
ॐ श्री धीरोदात्तगुणोत्तमाय नमः
ॐ श्री धीरोदात्तमाय नमः
ॐ श्री मायामानुषचारित्राय नमः
ॐ श्री महादेवादिपूजिताय नमः
ॐ श्री सेतुकृते नमः
ॐ श्री जितवाराशये नमः
ॐ श्री सर्वतीर्थमयाय नमः
ॐ श्री हरये नमः
ॐ श्री श्यामाङ्गाय नमः
ॐ श्री सुन्दराय नमः
ॐ श्री शूराय नमः
ॐ श्री पीतवाससे नमः
ॐ श्री धनुर्धराय नमः
ॐ श्री सर्वयज्ञाधिपाय नमः
ॐ श्री यज्वने नमः
ॐ श्री जरामरणवर्जिताय नमः
ॐ श्री विभीषणप्रतिष्ठात्रे नमः
ॐ श्री सर्वांगगुणवर्जिताय नमः
ॐ श्री पारगाय नमः
ॐ श्री परमात्मने नमः
ॐ श्री परब्रह्मणे नमः
ॐ श्री सच्चिदानन्दविग्रहाय नमः
ॐ श्री परंज्योतिषे नमः
ॐ श्री परंधाम्ने नमः
ॐ श्री पराकाशाय नमः
ॐ श्री पाराय नमः
ॐ श्री सर्वदेवात्मकाय नमः
ॐ श्री परस्मै नमः

१२. श्रीवैष्णव स्वरूपानुष्ठान भगवत् प्राप्ति का उपाय मानकर उपेयरूप समझना।

१३. महाभागवतों को एक वचन में बुलाना चाहिए।

१४. श्रीवैष्णव को देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए।

१५. भगवान् एवं श्रीवैष्णव की सन्निद्धि में पैर फैलाकर न बैठे।

१६. भगवान्, श्रीवैष्णवों एवं गुरुजनों के स्थान की तरफ पैर फैलाकर न सोवें।

१७. प्रात:काल उठकर गुरुपरम्परा का अनुसन्धान करें।

१८. भगवद् सन्निधि में बैठे हुए भागवतों को देखें तथा 'समस्त परिवार विशिष्टाय श्रीमते नारायणाय नम:' कहकर साष्टांग प्रणाम करें।

१९. भगवद् भागवतों का गुणानुवाद करते हुए श्रीवैष्णवों की यथाशक्ति पूजा किये बिना और प्रणाम किये बिना चले जाना महान अपचार है।

२०. श्री वैष्णवों का आगमन सुनकर आगे बढ़कर स्वागत करना और जाते समय कुछ दूर साथ जाकर बहुमान पूर्वक विदा करना चाहिए ऐसा न करने पर अपराध होता है।

२१. आत्मा के उज्जीवन के लिए अपने को श्रीवैष्णवों का शेषभूत मानकर श्रद्धापूर्वक श्रीवैष्णव महात्माओं की आज्ञा का अनुसरण करते हुए शरीर पोषण कीजिए और लोगों के घर-घर भटकना एवं अपने नियमों को छोड़ना यह भी अनाचार है और श्रीवैष्णव स्वरुप के लिए हानिकारक है।

अथ मन्त्रपुष्पाञ्जलिः

हरि ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं-तद् विप्रासो विपन्वयो जाग्रवां सः समिन्धते-विष्णोर्यत् परमं पदम् पर्याप्तानन्तरायाय सर्वस्तोमोति रात्र उत्तममहर्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यजित्यै सर्वमेव तेनाप्नोति, सर्वं जयति हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सुगंधवल्लीशतपत्रजाति, सुवर्णचम्पावकुलोद्भवानि।
गृहाण देवेश मयार्पितानि, प्रभो हरे श्रीतुलसीदलानि ॥

॥ श्रीतुलसी नामार्चनम् ॥

ॐ श्री केशवाय नमः
ॐ श्री नारायणाय नमः
ॐ श्री माधवाय नमः
ॐ श्री गोविन्दाय नमः
ॐ श्री विष्णवे नमः
ॐ श्री मधुसूदनाय नमः
ॐ श्री त्रिविक्रमाय नमः
ॐ श्री वामनाय नमः
ॐ श्री श्रीधराय नमः
ॐ श्री हृषीकेशाय नमः
ॐ श्री पद्मनाभाय नमः
ॐ श्री दामोदराय नमः
ॐ सर्वमंगलविग्रहाय नमः
ॐ समस्तपरिवारविशिष्टाय

श्रीमते नारायणाय नमः
ॐ श्री रामाय नमः
ॐ श्री रामभद्राय नमः
ॐ श्री रामचन्द्राय नमः
ॐ श्री शाश्वताय नमः
ॐ श्री राजीवलोचनाय नमः
ॐ श्रीमते नमः
ॐ श्री राजेन्द्राय नमः
ॐ श्री जानकीवल्लभाय नमः
ॐ श्री जितामित्राय नमः
ॐ श्री जनार्दनाय नमः
ॐ श्री विश्वामित्रप्रियाय नमः
ॐ श्री दान्ताय नमः
ॐ श्री शरणत्राणतत्पराय नमः

३५. ज्ञानी भागवतों एवं मुझ (यतिराज) में समबुद्धि नहीं रखनी चाहिए

३६. यदि भूल से भी प्राकृत लोगों का स्पर्श हो जाय तो वस्त्रों सहित स्नान करके श्रीवैष्णवों का श्री पादतीर्थ ग्रहण करना चाहिए।

३७. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सम्पन्न महात्माओं को नित्य सूरि के समान मानकर उनमें विश्वास करना चाहिए।

३८. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य सम्पन्न श्रीवैष्णव महात्माओं से प्रेम बढ़ाना चाहिए।

३९. प्राकृत लोगों के घरों में स्थित भगवान के विग्रह की सेवा नहीं करनी चाहिए।

४०. प्राकृत लोगों के घर पर भगवान का तीर्थ नहीं लेना चाहिए।

४१. भगवान के दिव्य देशों में दृष्टि दोष नहीं माना जाता।

४२. 'दास ने आज एकादशी व्रत किया है'। ऐसा कहकर भगवान की सन्निधि में भागवतों के द्वारा दिये गये गोष्ठी प्रसाद का त्याग नहीं करना चाहिए।

४३. समस्त पापों को नष्ट करने वाले भगवत् प्रसाद में कभी-भी उच्छिष्ट भावना नहीं लाना चाहिए।

४४. कभी भी वैष्णव के सामने अपनी प्रशंसा न करे।

४५. श्रीवैष्णव की सन्निधि में किसी का तिरस्कार न करें।

४६. श्रीवैष्णव महात्माओं के गुणों का अनुभव तथा उनकी सेवा क्षणभर भी किये बिना कोई कार्य न करें।

४७. दिन में एक घड़ी भी अपने आचार्य के गुणों का अनुसंधान करना चाहिए।

गज की टेर सुनी रघुनन्दन, आप पधारे नारायण श्री ॥१२॥
जल डूबत गजराज उबारे, श्री चक्र सुदर्शन धारायण श्री ॥१३॥
सरयू के तीर अयोध्या नगरी, श्रीरामचन्द्र अवतारायण श्री ॥१४॥
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, अद्भुत शोभा धारायण श्री ॥१५॥
सरयू के नीरे तीरे तुरंग नचावें, धनुषबाण कर धारायण श्री ॥१६॥
कोमल गात पीताम्बर सोहै, उर वैजयन्ती धारायण श्री ॥१७॥
बकसर जाय ताड़का मारी, मुनि के यज्ञ किये पारायण श्री ॥१८॥
स्पर्शत चरण शिला भई सुन्दर, बैठ विमान भई पारायण श्री ॥१९॥
जाय जनकपुर धनुष उठायो, राजा जनक प्रण सारायण श्री ॥२०॥
जनकस्वयंवर पावन कीन्हौं, वरमाला हरि धारायण श्री ॥२१॥
सीता ब्याह राम घर आये, घरघर मङ्गलाचारायण श्री ॥२२॥
मात पिता की आज्ञा पाई, चित्रकूट पग धारायण श्री ॥२३॥
दण्डकवन प्रभु पावन कीन्हों, ऋषि मुनि त्रास मिटारायण श्री ॥२४॥
सागर ऊपर शिला तराई, कपि दल पार उतारायण श्री ॥२५॥
रावण के दश मस्तक छेदे, राज विभीषण पारायण श्री ॥२६॥
रामरूप होय रावण मार्‍यो, भक्त विभीषण तारायण श्री ॥२७॥
यमुना की नीरे तीरे मथुरा नगरी, श्रीकृष्णचन्द्र अवतारायण श्री ॥२८॥
मथुरा में हरि जनम लियो है, गोकुल में पग धारायण श्री ॥२९॥
बालपने हरि पूतना मारी, जननी की गति पारायण श्री ॥३०॥
बालपने मुखमटिया खाई, तीन लोक दर्शारायण श्री ॥३१॥
मात यशोदा ऊखल बाँधे, यमला अर्जुन तारायण श्री ॥३२॥
मोरमुकुट, पीताम्बर सोहै, श्रवणन कुण्डल धारायण श्री ॥३३॥
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावें, मुख पर मुरली धारायण श्री ॥३४॥
पैठ पाताल कालियानाथ्यो, फणपर नृत्य करारायण श्री ॥३५॥
बृन्दावन में रास रच्यो है, सहस्र गोपी एक नारायण श्री ॥३६॥
इन्द्र कोप कियो ब्रज ऊपर, बरसत मूसल धारायण श्री ॥३७॥

६२. श्रीवैष्णव की इच्छा परम पद में प्रकट हुई थी, यह जानकर श्री वैष्णवों की निरन्तर भलाई करें।

६३. धर्म विरुद्ध महाफल वाले कार्य को भी बुद्धिमान न करें। क्योंकि यह अहितकर होता है।

६४. भगवान को समर्पित किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए।

६५. उपायान्तर से बिना माँगे न मिलने वाली कोई भी वस्तु स्वीकार न करें।

६६. पुष्प, चन्दन, पान, फल, वस्त्र, जल आदि भी भगवान को समर्पित किये बिना ग्रहण न करें।

६७. जाति दुष्ट, निमित्त दुष्ट और आश्रय दुष्ट अन्न भगवान को समर्पित न करें।

६८. अपनी रुचि के लिए अपने को प्रिय पदार्थ ही परमात्मा को भोग न लगावें। अपितु शास्त्रानुसार सभी पदार्थों का भोग भगवान को लगावें।

६९. भगवान को समर्पित अन्न, जल, फल आदि में सदा प्रसाद बुद्धि रखनी चाहिए। भोग बुद्धि कभी भी न रखें।

७०. भागवतापचार ही अपना नाश एवं भगवन्मुखोल्लास ही अपनी उन्नति है।

७१. मंत्रत्रयों (मूल मंत्र, द्वय मंत्र, चरम मंत्र) इन तीनों मन्त्रार्थ में पूर्ण निष्ठा रखने वाले महाभागवतों के शास्त्रीय कर्मों को कैंकर्य बुद्धि में सम्पन्न करें।

७२. भागवतों की पूजा से बढ़कर पुरुषार्थ नहीं और भागवत द्वेष से बढ़कर आत्मनाश नहीं।

रघुवर यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य
प्रणत इति दयालुर्यच्च चैद्यस्य कृष्ण: ।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्ध सायुज्यदोभू-
र्वद किमपदमागस्तस्य तेऽस्ति क्षमाया: ॥६६॥

ननु प्रपन्न: सकृदेव नाथ
तवाहमस्मीति च याचमान: ।
तवानुकम्प्य: स्मरत: प्रतिज्ञां
मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ॥६७॥

अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्द-
प्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम् ।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य
प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ॥६८॥

यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मष: ।
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम् ॥६९॥

समाप्तम्



डॉ.तुलसीदास परौहा

सहायक प्राध्यापक - संस्कृत विभाग

जगद्गुरू रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.)

जन्म : डॉ.परौहा का जन्म मध्यप्रदेश के कटनी जिले में कैमूर पर्वत श्रृंखला की उपत्यका में अवस्थित बम्हौरी नामक ग्राम में 12 जून 1971 ई. में हुआ।

शिक्षा : प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तरपर्यन्त सभी परीक्षायें विशेषांको सहित प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण डॉ.परौहा ने अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा म.प्र. से आचार्य (नव्य व्याकरण) एवं एम.ए. (संस्कृत साहित्य) की उपाधि तथा महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट जिला-सतना मध्य प्रदेश से पी.एच.डी. की उपाधि अर्जित की।

रचनायें : सङ्कर्षणचरितामृतम् (संस्कृतखण्डकाव्य)
गीताभागीरथी (संस्कृतगीतकाव्य संग्रह)
गीतमंदाकिनी (हिन्दीगीतकाव्यसंग्रह)
श्रीसीताराममन्दिरविभवः (संस्कृतगीतकाव्य)
श्रीचित्रकूटस्तवराजः (संस्कृतस्तोत्रकाव्य)
जगद्गुरूस्वामीरामभद्राचार्य (हिन्दी शोधग्रन्थ)
श्रीरामकुमाराष्टकम्, श्रीवनवासीरामाष्टकम् आदि।